Con. 3. VII.14.48
350

अंक 7
संख्या 14

शुक्रवार
26 नवम्बर
सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

1. आयर-अधिनियम के विषय में वक्तव्य..... 877-881
2. नियम 38 में उप-नियमों का जोड़ना..... 881-934
3. विधान का मसौदा-(*जारी*) 934-939
   [अनुच्छेद 8 पर विचार]

भारतीय विधान-परिषद्

शुक्रवार, 26 नवम्बर सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद् की बैठक कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में उपाध्यक्ष महोदय (डा. एच.सी. मुकर्जी) के सभापतित्व में प्रातः दस बजे समवेत हुई।

आयर अधिनियम विषयक वक्तव्य

***माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू** (संयुक्तप्रांत : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, परिषद् को ज्ञात है कि अर्वाचीन काल में आयर में कुछ ऐसे परिवर्तन हुए हैं, जिनका प्रभाव आयर से (कामनवेल्थ) राष्ट्रमंडलीय देशों के सम्बन्धों पर पड़ता है। नवम्बर की 17 तारीख को डेल में आयर-अधिनियम का, जिसका कि नाम आयरलैंड गणतंत्र अधिनियम है, प्रथम वाचन हुआ। दूसरा वाचन नवम्बर की 24 तारीख को हुआ।

कामनवेल्थ के देशों तथा आयर में जो प्रगाढ़ सम्बन्ध रहे हैं, उन्हें दृष्टिगोचर करते हुए अभीष्ट समझा गया कि इस विधेयक के पारित हो जाने से जो अवस्था उत्पन्न होगी उसे स्पष्ट कर दिया जाये। इस विषय पर भारत सरकार यूनाइटेड किंगडम (ब्रिटेन) तथा आयर सरकार के साथ पत्र-व्यवहार करती रही है और दोनों सरकारों ने कृपा करके हमें सूचित किया है कि आयरलैंड गणतंत्र अधिनियम के पारित हो जाने के पश्चात्, उनके विचार के अनुसार, क्या स्थिति उत्पन्न होगी। उन्होंने हमें उन वक्तृताओं के विवरण भेज दिये हैं जो कि इस विषय में उनकी संसदों में दी गई थी।

क्योंकि इस अधिनियम के पारित हो जाने से आयर में भारतीय नागरिकों तथा भारत में आयर के नागरिकों पर प्रभाव पड़ सकता है, अतः भारत सरकार को स्वभावतः इस विषय के स्पष्टीकरण में रुचि है।

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

24 नवम्बर को डेल में आयरलैंड गणतंत्र विधेयक पर वक्तृता देते हुए आयर के प्रधानमंत्री श्री कास्टैलो ने कहा था:

''नये विधेयक में इसके हेतु प्रावधान किया जायेगा कि ब्रिटिश राष्ट्रमंडल में हमारे नागरिकों को जो अधिकार प्रदान किये जायें, हमारे यहां भी राष्ट्रमंडल के नागरिकों को तत्समान अधिकार मिलें। एक बात मैं ब्रिटेन में तथा सामान्य रूप से सारे राष्ट्रमंडल में अपने मित्रों को स्पष्टतया बता देना चाहता हूं; वह यह है कि इस विधेयक के पारित होने के पश्चात्, यदि वे ऐसा चाहेंगे तो, हम नागरिक अधिकारों तथा विशेषाधिकारों का आदान-प्रदान जारी रखेंगे। इस समय आयरलैंड उनके नागरिकों को विदेशी या उनके देशों को विदेश नहीं मानता और जब परराष्ट्र सम्बन्ध अधिनियम का विखंडन हो जायेगा, तब भी हमारा ऐसा करने का विचार नहीं है। आदि से अंत तक आयर सरकार की स्थिति यह है कि यद्यपि आयरलैंड ब्रिटिश राष्ट्रमंडल का सदस्य नहीं है, किन्तु यह ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के देशों के साथ एक विशेषतया प्रगाढ़ सम्बन्ध के अस्तित्व को मानता है तथा उसकी पुष्टि करता है। यह सम्बन्ध केवल मित्रता तथा भ्रातृत्व के बन्धनों से ही नहीं, वरन् उन परम्परागत तथा चिरस्थायी आर्थिक, सामाजिक एवं व्यापारिक सम्बन्धों से उत्पन्न होते हैं जिनका आधार उन देशों के साथ हमारे समान हित हैं। अधिकारों एवं विशेषाधिकारों का यह आदान-प्रदान, जिसे बनाये रखने तथा सुदृढ़ बनाने का हमारा विचार है। हमारे विचार में एक विशेष सम्बन्ध है जो इस दृष्टिकोण का निराकरण कर देता है कि अन्य देश इन आधारों पर कोई वैध आपत्ति कर सकते हैं कि ब्रिटेन तथा अन्य राष्ट्रमंडलीय देशों को आयरलैंड के साथ अधिकारों एवं विशेषाधिकारों के आदान-प्रदान के प्रयोजनार्थ परराष्ट्र के समान व्यवहार करना चाहिये। यही विचार हम ब्रिटेन तथा राष्ट्रमंडल के देशों के समक्ष उपस्थित करते हैं। हम देखते हैं कि वे भी अपनी ओर से समान रूप से दृढ़ संकल्प हैं कि वे इस विधेयक के पारित होने का अर्थ आयरलैंड को विदेशों की श्रेणी में रखना या हमारे नागरिकों को विदेशियों की श्रेणी में रखना नहीं समझेंगे, प्रत्युत वे नागरिकता तथा व्यापार में प्राथमिकता के अधिकारों के आदान-प्रदान को जारी रखने के लिये

उद्यत हैं तदनुसार अधिकारों का जो वस्तुतः आदान-प्रदान अब तक होता रहा है वह निर्बाध उसी प्रकार होता रहेगा। इस आदान-प्रदान में से हमने विवादास्पद बातें निकाल दी है, इसलिये हम उचित रूपेण आशा कर सकते हैं कि यह वास्तविक सम्बन्ध सद्भावना तथा सहयोग की भावना से प्रेरित होंगे।''

यूनाइटेड किंगडम की ओर से प्रधानमंत्री श्री एटली ने कल, 25 नवम्बर सन् 1948 को, लोक सभा में निम्न वक्तव्य दिया:

''1937 में आयर में एक नवीन विधान पारित हुआ था जिसमें सम्राट का कोई स्थान नहीं रखा गया है। किन्तु 1936 में आयर अधिशासी प्राधिकार (परराष्ट्र संबंध) अधिनियम पारित हुआ था जिसके अनुसार सम्राट को यह अधिकार था कि वे आयर की अधिशासी परिषद् द्वारा मंत्रणा देने पर तथा तदनुसार परराष्ट्र विषयक क्षेत्र के अंतर्गत कुछ विषयों में आयर की ओर से कार्य कर सकते हैं। दिसम्बर 1937 में यूनाइटेड किंगडम की सरकार ने कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड एवं दक्षिणी अफ्रीका की सरकारों से परामर्श करके यह कहा था कि यह सरकार उन सरकारों के समान यह मानने के लिये उद्यत है कि नये विधान से राष्ट्रमंडल के सदस्य के रूप में आयर की स्थिति में कोई मूल-परिवर्तन नहीं होगा।

गत सात सितम्बर को आयर के प्रधानमंत्री श्री कास्टैलो ने यह घोषणा की कि आयर सरकार परराष्ट्र संबंध अधिनियम के विखंडन करने की तैयारी कर रही है। तत्पश्चात् श्री कास्टैलो ने इस विचार की पृष्टि कर दी।''

फिर श्री एटली ने उस विचार-विमर्श की चर्चा की है जो आयर के मंत्रियों के साथ हुआ था। इसका उद्देश्य यह पता लगाना था कि आयर में प्रस्तावित अधिनियम निर्माण से क्या परिणाम होंगे।

''इस विचार-विनिमय के परिणामस्वरूप यूनाइटेड किंगडम सरकार उन संबंधों पर अत्यन्त ध्यान से विचार कर सकी है जो आयरलैंड गणतंत्र विधेयक के लागू हो जाने पर यूनाइटेड किंगडम तथा आयर के बीच स्थापित होंगे। यूनाइटेड किंगडम सरकार यह मानती है कि, जैसे आयर के मंत्रियों ने कहा है, आयर आगे से राष्ट्रमंडल का सदस्य नहीं रहेगा। किन्तु आयर सरकार ने कहा है कि वे आयर तथा राष्ट्रमंडल के देशों के मध्य तक विशेषतया प्रगाढ़ संबंध के अस्तित्व को मानते हैं तथा चाहते हैं कि यह संबंध बना रहे। यह प्रगाढ़ संबंध समान हितों पर आधारित परम्परागत तथा चिरस्थायी आर्थिक एवं व्यापारिक प्रबंधों और बंधुत्व

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

के बंधनों से उत्पन्न होते हैं। यूनाइटेड किंगडम की सरकार श्री मैक-ब्राइड द्वारा व्यक्त विचारों से पूर्णतया सहमत है और आयर सरकार के समान हमारी भी यही इच्छा है कि इन प्रगाढ़ तथा मैत्रीपूर्ण संबंधों को बनाये रखा जाये तथा प्रबल बनाया जाये।

तदनुसार यूनाइटेड किंगडम सरकार आयर द्वारा इस कानून के निर्माण का यह अर्थ नहीं समझेगी कि उसके लिये आयर को विदेश अथवा आयर के नागरिकों को विदेशी समझना अपेक्षित है। हमें पता चला है कि राष्ट्रमंडल की अन्य सरकारें इस विषय में अपनी नीति के बारे में शीघ्र अपने विचार व्यक्त करेंगी।

''जहां तक आयर के नागरिकों का संबंध है, यूनाइटेड किंगडम में उनकी स्थिति का निर्णय ब्रिटिश राष्ट्रीयता अधिनियम 1948 के अनुसार होगा। आयर सरकार ने कहा है कि उनका विचार कामनवेल्थ के देशों के कानूनों के समान ही कानून बनाने का है, जिससे कि कानून द्वारा यह आयोजन कर दिया जाये कि आयर में राष्ट्रमंडलीय देशों के नागरिकों के साथ वैसा ही व्यवहार हो।''

आयर तथा ब्रिटिश संसद में जो यह वक्तव्य दिये गये हैं उनसे भारत सरकार की सहमति मैं व्यक्त करना चाहता हूं और कहना चाहता हूं कि हम पारस्परिकता के आधार पर आयर के साथ नागरिक अधिकारों तथा विशेषाधिकारों का आदान-प्रदान जारी रखने के लिये पूर्णरूपेण उद्यत हैं। हमारा राष्ट्रमंडल से क्या संबंध रहेगा, इस विषय पर तो परिषद् को ज्ञात ही है कि ध्यानपूर्वक विचार हो रहा है और मुझे विश्वास है कि बहुत समय व्यतीत होने से पहले ही कोई संतोषजनक उपाय निकल आयेगा। इस समय तो हमारा वास्ता वर्तमान स्थिति से ही है। मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि आयरलैंड गणतंत्र विधेयक के पारित हो जाने के पश्चात् हम आयर को विदेशों की गिनती में अथवा उसके नागरिकों को विदेशियों की गिनती में नहीं मानेंगे, पर शर्त यह है कि आयरलैंड भी हमारे देश तथा हमारे नागरिकों को वही अधिकार तथा विशेषाधिकार दे।

मैं यह भी कहना चाहता हूं कि आयर तथा भारत के मध्य लम्बे काल से सहानुभूति तथा मैत्रीपूर्ण भावना का गहरा बंधन रहा है। भारत सरकार को विश्वास है कि भूतकाल के समान भविष्य में भी आयर तथा भारत की सरकारों तथा जनता के मध्य गहरे और मैत्रीपूर्ण संबंध बने रहेंगे।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): क्या मैं आपसे निवेदन करूं कि आप यह आदेश देने की कृपा करें कि इस परिषद् के सदस्यों को आयरलैंड गणतंत्र विधेयक और डेल आयरीन में उस पर दिये हुए भाषणों, तथा लोकसभा में श्री एटली के भाषण और उसके साथ-साथ माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू के वक्तव्य की प्रतियां दे दी जायें।

***उपाध्यक्ष:** (डा. एच.सी. मुकर्जी): वे दी जा सकती हैं। उसके लिए हमें सबसे पहले उन प्रलेखों को प्राप्त करना होगा। जब वे उपलब्ध हो जायेंगे, तब वे सब सदस्यों को दे दिये जाएंगें।

***माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू:** मैंने अभी जो वक्तव्य दिया है, उसमें मैंने श्री कास्टैलो तथा श्री एटली की वक्तृताओं में से विस्तृत उद्धरण दिये हैं जो उन्होंने अपनी-अपनी संसदों में दी थीं, अत: माननीय सदस्य की बात कदाचित् इससे ही पूरी हो जायेगी कि मेरे वर्तमान वक्तव्य की प्रतियां, जिनमें कि डेल आयरीन तथा लोक सभा के वक्तव्यों के उद्धरण समाविष्ट हों, वितरित कर दी जायें। यह अवश्य किया जा सकता है। आयरलैंड गणतंत्र विधेयक की प्रतिलिपि के विषय में, मेरा कहना है कि नि:संदेह वह उपलब्ध करायी जा सकती है, किन्तु मुझे पूर्णतया भरोसा नहीं है कि ऐसा करना अतिशीघ्र संभव हो सकेगा। कदाचित् परिषद् का प्रयोजन इससे सिद्ध हो जायेगा कि कुछ प्रतियां मंगा कर मेज पर रख दी जायें।

***उपाध्यक्ष:** मेरे विचार में इससे काम चल जायेगा। अब मैं श्रीमती दुर्गाबाई से अनुरोध करता हूं कि उनके नाम में जो प्रस्ताव है, वे उसे उपस्थित करें।

नियम 38पी के साथ उपनियम जोड़ने का प्रस्ताव

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं निम्न प्रस्ताव पेश करती हूं जो कि मेरे नाम में है:

> ''(क) कि वर्तमान नियम 38-पी की संख्या 38-पी नियम का उपनियम (1) कर दी जाये, और उक्त उपनियम के पश्चात् निम्नलिखित उपनियम जोड़ दिये जायें:
>
> '(2) अध्यक्ष को (ऐसे) संशोधनों को, जिनका उद्देश्य केवल शाब्दिक, व्याकरण-संबंधी अथवा रूप सम्बन्धी परिवर्तन करना हो, पेश होने से रोक देने का अधिकार होगा।

[श्रीमती जी. दुर्गाबाई]

(3) अध्यक्ष को यह भी अधिकार होगा कि वह सदृश अभिप्राय के संशोधनों में से परिषद् के विचारार्थ तथा मत लेने के लिये अधिक उचित अथवा व्यापक संशोधन अथवा संशोधनों को चुन ले, और ऐसे किसी संशोधन के विषय में जो इस प्रकार चुना न गया हो, यदि वह वापिस न ले लिया जाये, तो यह समझा जा सकता है कि वह पेश किया जा चुका है तथा बिना वाद-विवाद के उस पर मत लिये जा सकते हैं।' ''

श्रीमान्, आरंभ में ही मैं यह स्पष्ट कर दूं कि परिषद् के समक्ष यह प्रस्ताव लाने का मेरा उद्देश्य मुख्यत: यह है कि अब तक विधान के मसौदे में जिन बहुत से संशोधनों की सूचना आई है, उन्हें शीघ्र समाप्त किया जाये तथा इस प्रकार हमारे सामने जो कार्य है उसे शीघ्रता से किया जाये। मुझे पता है कि विधान के मसौदे पर अब तक ही चार हजार से अधिक संशोधन आ चुके हैं। मेरे विचार में हमारे लिये इतने बहुसंख्य संशोधनों पर समुचित समय में विचार करना अत्यंत कठिन होगा; अत: यह अपेक्षित समझा जाता है कि कार्य को अधिक शीघ्रता से समाप्त एवं सम्पन्न करने के लिये कोई विशेष कार्यप्रणाली निकालनी चाहिये। श्रीमान्, यदि परिषद् उस प्रणाली को स्वीकार कर ले जो कि मैंने इस संशोधन में सुझाई है, तो इससे हमें इस उद्देश्य के प्राप्त करने में ही सहायता नहीं मिलेगी, वरन हम अपने सीमित समय को अधिक उपयुक्त संशोधनों तथा सारभूत संशोधनों पर व्यय भी कर सकेंगे। इस नियम का उद्देश्य यह है कि सभापति को अधिकार दे दिया जाये कि वे सदृश आशय के संशोधनों में से अधिक उपयुक्त अथवा व्यापक संशोधन अथवा संशोधनों को चुन लें। इससे सभापति को यह भी अधिकार दिया गया है कि वह ऐसे संशोधनों को पेश होने से रोक सकते हैं, जिनका उद्देश्य केवल शाब्दिक, व्याकरण-सम्बन्धी अथवा रूप-सम्बन्धी परिवर्तन करना हो। श्रीमान्, इससे पहले कि मैं यह प्रस्ताव परिषद् की स्वीकृति के लिये पेश करूं, मैं सबसे अनुरोध करती हूं कि मेरे संशोधन के क्षेत्र को उसी भावना से समझें, जिससे कि मैंने यह आपके समक्ष पेश किया है। इससे परिषद् के सदस्यों अथवा सदस्यों के किसी वर्ग के मन में कोई ऐसी आशंका अथवा भय उत्पन्न नहीं होना चाहिये कि इसका उद्देश्य उनके विशेषाधिकारों को कम करना है। सभापति को यह अधिकार

देकर हम कोई असाधारण बात नहीं कर रहे हैं और मुझे यह भी विश्वास है कि इस अधिकार का प्रयोग करते समय सभापति किसी को अप्रसन्न नहीं करेंगे, अपितु सबको प्रसन्न करेंगे। हमारे पास ऐसा सोचने के लिये पर्याप्त कारण हैं कि सभापति इस अधिकार का प्रयोग अतीव न्यायपूर्वक करेंगे। इन थोड़े से शब्दों के साथ मैं अपना प्रस्ताव स्वीकृति के लिये परिषद् में पेश करती हूं।

***उपाध्यक्षः** अब हम संशोधनों को एक-एक करके लेंगे।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): क्या मैं अब इस पर बोल सकता हूं?

***उपाध्यक्षः** संशोधन पेश हो चुकेंगे, तत्पश्चात् व्यापक वाद-विवाद होगा। आपको अपना दृष्टिकोण परिषद् में पेश करने के लिये पर्याप्त समय दिया जायेगा। पहला संशोधन श्री नज़ीरुद्दीन अहमद के नाम में है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** उपाध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, अपने संशोधनों को पेश करते हुए मेरे विचार में, मेरा यह कर्त्तव्य है कि मेरे मन में जो सामान्य विचार उत्पन्न होते हैं उन्हें व्यक्त करूं, किन्तु ऐसा करने से पहले मेरे लिये यह उचित होगा कि मैं पहला संशोधन पेश करूं जो कि मेरे नाम में है। श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि नियम 38-पी के प्रस्तावित उपनियम (2) में 'President shall (अध्यक्ष को) इन शब्दों के आगे 'उस सदस्य की बात सुनने के बाद जिसने कि संशोधन की सूचना दी हो' ये शब्द जोड़ दिये जायें।''

***उपाध्यक्षः** क्या आप संशोधन सं. 1 पेश नहीं कर रहे हैं?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** मुझे खेद है, मैं इसे छोड़ गया। मैं यह भी प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि नियम 38-पी का प्रस्तावित उपनियम (2) निकाल दिया जाये।''

***उपाध्यक्षः** मेरा सुझाव है, श्री नज़ीरुद्दीन अहमद, कि आपको जो व्यापक बातें कहनी हों वे भी अब ही कह दें।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं आपके निर्णय को सविनय स्वीकार करता हूं

श्रीमान्, मैं सोचता था कि इस समय जो नियम हैं, जिन्हें काफी सोच-विचार के पश्चात् बनाया गया है और जो अन्य नियमावलियों के आधार पर रचे गये हैं, उनके अनुसार वाद-विवाद के आनियमन के विषय में सभापति को पर्याप्त अधिकार मिले हुए हैं। वे नियम इस धारणा पर बनाये गये थे कि सदस्य भी अपनी वक्तृताओं में काफी बुद्धिमत्ता एवं संयम से काम लेंगे। इस प्रस्ताव के पीछे एक प्रकार का ऐसा संशय कार्य कर रहा है कि उस उचित नीति के अनुसार कार्य करने के लिये न तो सदस्यों की इच्छा है और न उनमें उसके लिये अपेक्षित संयम है। साथ ही इससे यह शंका भी व्यक्त होती है कि साधारण नियमों के अधीन पर्यालोचन को नियंत्रित करने में अध्यक्ष भी असमर्थ हैं इस अवस्था में कौन से नियम लागू हो सकते हैं? ऐसे किसी भी संशोधन के नियम-विरुद्ध ठहराने में किंचित मात्र अन्याय न होगा जो असंगत है, अथवा जिसमें केवल और संशोधनों की लम्बी-चौड़ी पुनरावृत्ति है, अथवा जो अपमानास्पद अथवा असंसदात्मक हो, अथवा जिस पर इन बातों के कारण आपत्ति की जा सकती हो। ऐसा क्या कार्य हुआ है, जिसने कि सुन्दर महिला को यह संशोधन पेश करने के लिये प्रेरित किया है? मेरा निवेदन है कि परिषद् की अब तक की कार्यवाही से कुछ संकेत मिलता है। कुछ विगत काल से, मुझे यह देख कर अत्यन्त खेद है कि तथाकथित मसौदा सम्बन्धी अथवा रूप सम्बन्धी संशोधनों अथवा कुछ व्याकरण सम्बन्धी महत्त्व के संशोधनों को वाद-विवाद में लगभग रोक दिया जा रहा है, ऐसा नहीं है कि श्रीमान्, आप उन्हें रोक देते हैं, किन्तु इन संशोधनों के सम्बन्ध में सदस्यों को किसी हद तक परिषद् के कुछ सदस्य चुप कर देते हैं और प्राय: उत्तर कम दिये जाते हैं, जो अपूर्ण तथा असहायक होते हैं, और कई बार तो उत्तर दिये भी नहीं जाते; अपितु बहुत से प्रत्यारोप लगाये जाते हैं और उनसे मनमाने निष्कर्ष निकाल लिये जाते हैं।

मेरा निवेदन है कि प्रस्तावित नियमों पर विचार करने से पता चलेगा कि इन संशोधनों का मसौदा कितनी असावधानी से तैयार किया गया है और इन संशोधनों की लगभग प्रत्येक पंक्ति में कितनी त्रुटियां है। इन्हीं संशोधनों पर विचार करने से पता चलता है कि मसौदे में सुधार करने की कितनी महान् आवश्यकता है।

श्रीमान्, प्रस्ताव का यह आशय है कि अध्यक्ष को उन संशोधनों के रोक देने की शक्ति होगी जिनका उद्देश्य केवल शाब्दिक, व्याकरण सम्बन्धी अथवा रूप सम्बन्धी परिवर्तन करना हो। मैं पहले ही निवेदन कर चुका हूं कि वे प्रसंग-संगत न होने के कारण अथवा पुनरावृत्ति तथा अन्य प्रख्यात कारणों से सदा रोके जा सकते हैं। किन्तु क्या उन्हें केवल इसी कारण से रोक देना ठीक होगा कि वे शाब्दिक परिवर्तन हैं? क्या ऐसे किसी संशोधन को केवल शाब्दिक कहा जा सकता है जिससे प्रसंग का अर्थ ही बदल जाता हो? तत्पश्चात् व्याकरण-संबंधी संशोधनों का प्रश्न है। मेरे विचार में विधान के मसौदे के माननीय प्रस्तावक ने ऐसी छोटी-छोटी त्रुटियां की हैं, जिनसे बहुत से सदस्य चकित रह गये हैं। मैं अतीव नम्रता से आपसे पूछता हूं, श्रीमान्, क्या आपको कोई संशोधन केवल इसी आधार पर रोक देना चाहिये कि वह व्याकरण सम्बन्धी संशोधन है? क्या इससे यह निष्कर्ष अपेक्षित है कि व्याकरण सम्बन्धी संशोधन तथ्यहीन संशोधन होता है, और उसका उस खण्ड से कोई सम्बन्ध नहीं होता, जिसके सम्बन्ध में यह रखा गया है। मेरी धारणा है कि व्याकरण सुबोधता एवं अर्थ की स्पष्टता के हेतु सहमति से निश्चित की हुई नियमावलि है। यदि व्याकरण से विचार, अभिव्यक्ति तथा लेख की स्पष्टता नहीं बढ़ती, तो उसका कोई महत्त्व नहीं है। इन परिस्थितियों में मेरा विश्वास है कि नियम 38-पी का प्रस्तावित उपखण्ड (2) सर्वथा भ्रमात्मक है।

अब रूप सम्बन्धी परिवर्तनों की लीजिये, क्या आप एक रूप सम्बन्धी परिवर्तन को रोक सकते हैं अथवा क्या आप एक शाब्दिक दृष्टिगोचर होने वाले परिवर्तन को रोक देना चाहेंगे? शाब्दिक दिखाई देने वाले परिवर्तन के पीछे, प्रसंग का एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन छिपा हो सका है। इन परिस्थतियों में, मेरा सविनय निवेदन है कि यद्यपि समस्त सदस्यों को आपकी निष्पक्षता तथा अत्यधिक अनुग्रह में पूर्ण विश्वास है, किन्तु इन परिवर्तनों के पीछे एक संदेह है कि उपाध्यक्ष वर्तमान नियमों के अन्तर्गत कार्यवाही का आनियमन कदाचित् नहीं कर सकेंगे। श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि सदस्यों ने सदा ही आपके निर्णय तथा सहायक पथ-प्रदर्शन को प्रसन्नता, स्वेच्छा तथा आतुरता से स्वीकार करने की प्रवृत्ति दिखाई है। मेरा निवेदन है कि इस मामले को सदस्यों पर ही छोड़ दिया जाये, इसे सदस्यों की सद्भावना तथा

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

परिषद् की सद्भावना पर छोड़ दिया जाये। सदस्यों को बाध्य करने तथा कुछ हद तक श्रीमान्, आपको भी कठिन स्थिति में रखने के स्थान पर, मेरा निवेदन है कि यह नियम नहीं रहने चाहियें। इस समय यही बातें मेरे ध्यान में आती हैं। कुछ समय से मैं सोचता हूं कि रूप सम्बन्धी अथवा मसौदा सम्बन्धी संशोधनों अथवा वैसे दिखाई देने वाले संशोधनों को कुछ विरोध की भावना से देखा जा रहा है। वे बिना किसी वाद-विवाद, बिना किसी तर्क तथा बिना पर्याप्त विचार के ठुकराये जा रहे हैं। श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि इससे सदस्यों में, जो कि यहां प्रथम कोटि के विधान की रचना में सहायता देने के लिये विनीत रूप में आये हैं, नैराश्य की भावना उत्पन्न होती है। अन्यथा, श्रीमान्, हम आज जो महत्त्वपूर्ण विधान बना रहे हैं वह प्रहसन मात्र हो जायेगा। संसार की अन्य विधान-परिषदें आदर्श समझ कर इसका अनुकरण करेंगी। हम देखते हैं कि वक्तृताओं के सैकड़ों वर्ष पश्चात्, विधान-परिषदों के वाद-विवाद को वैधानिक वकील तथा इतिहासकार अत्यंत रुचि से पढ़ते हैं। श्रीमान्, मैं आपसे तथा परिषद् में अपने माननीय मित्रों से पूछता हूं कि क्या प्रस्तावित परिवर्तनों की आवश्यकता भी है, और क्या इनसे समस्त सदस्यों तथा व्यक्तिगत रूप से कुछ विशेष सदस्यों के विषय में यह संदेह उत्पन्न नहीं होता कि वे कार्य-संचालन के नियमों पर दृढ़ता से चलने के इच्छुक तथा योग्य नहीं हैं?

श्रीमान्, इन नियमों के मसौदे के विषय में तो जितना कम कहा जाये उतना ही अच्छा है। मेरा निवेदन है कि प्रस्तावित खंड (2) नितांत अनावश्यक है। फिर हम खंड (3) को लेते हैं। यह वाक्य-विन्यास का एक आश्चर्यजनक नमूना है और मैं कहता हूं कि यह वाक्य-रचना इतनी असावधानी तथा इतने निराशाजनक तरीके से की गई है कि इसे देखते ही पूर्णतया रद्द कर देना चाहिये। इससे पता चलता है कि इस परिषद् में इन संशोधनों से भी कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण प्रलेख अर्थात् विधान को ध्यान से दोहराने की कितनी आवश्यकता है। श्रीमान्, खंड (3) में प्रथम भाग दूसरे के सर्वथा विपरीत है।

श्रीमान्, प्रथम भाग का आशय कुछ संशोधनों को विचारार्थ चुनने का है। किस प्रयोजन से (ऐसा करना है)? संशोधन में लिखा है: ''इस प्रकार जो संशोधन चुने नहीं जायें उन पर मत लिये जा सकते हैं''। हम इसका क्या अभिप्राय समझें?

आपसे स्पष्टतया एक संशोधन चुनने के लिये प्रार्थना की गई है; वह किसलिये की गई है? अभिप्राय यह है कि एक संशोधन चुना जायेगा और तत्पश्चात् एक अन्य संशोधन पर मत लिये जायेंगे, अर्थात् उस संशोधन पर मत लिये जायेंगे जो चुना नहीं जाये। अतएव मेरा सविनय निवेदन है कि खंड (3) का मसौदा निराशाजनक रूप से, हास्यास्पद रूप से तथा पूर्ण रूप से त्रुटिपूर्ण है। मैं इस परिषद् में कभी भी ऐसे प्रवाह में नहीं बोला, किन्तु परिस्थितियां, मनोभावनायें तथा चारों ओर हम जो कानाफूसी सुनते हैं वह मुझे बाध्य करती है कि मैं इस प्रकार बोलूं। क्या परिषद् खंड (3) को स्वीकार कर सकती है, जिसमें पूर्ववर्त्ती भाग अगले भाग के नितांत विपरीत है? श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि मैंने 'नहीं' शब्द को निकाल देने के लिये एक संशोधन की सूचना भेजी है, और तभी आप इससे कुछ आशय निकाल सकते हैं। मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि इस संशोधन को रद्द कर दें, क्योंकि यह 'शाब्दिक' है और क्योंकि यह शाब्दिक है, अत: मैं आपके निर्णय के सामने नतमस्तक हो जाऊंगा। इससे ऐसा कानून बनेगा जिसका कुछ भी अर्थ न होगा। 'नहीं' शब्द के भयावह गुण का वर्णन करते हुए, मैं इसको निकालने का प्रस्ताव न रखने के लिये आपकी अनुमति चाहूंगा और यह विचार करने का काम परिषद् तथा माननीय सदस्य पर छोड़ दूंगा कि वास्तव में हमने क्या कुछ बनाया है।

फिर, श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि नियम 38-डब्ल्यू रखने के आशय का भाग (ख) भी अपकारी है। यह भी त्रुटिपूर्ण कल्पना तथा त्रुटिपूर्ण वाक्य रचना है। इस नियम का क्या आशय है? इसका आशय एक कमी को दूर करना बताया जाता है, अर्थात् कुछ विशेष नियमों के प्रयोजन के लिये अध्यक्ष के स्थान पर काम करने की उपाध्यक्ष की कल्पित शक्तिहीनता को दूर करना बताया जाता है। श्रीमान्, ध्यानपूर्वक विचार करने पर मैं देखता हूं कि अध्यक्ष के अधिकारों की कहीं भी स्पष्टता से परिभाषा नहीं की गई है, और इतनी देर बाद अब परिस्थिति को संभालने के लिये ऐसा करने का प्रयत्न किया जा रहा है। श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि क्योंकि हमने एक उपाध्यक्ष की व्यवस्था की है, किन्तु उसके अधिकारों की परिभाषा नहीं की है, यह सुस्पष्ट है कि उपाध्यक्ष को अध्यक्ष अथवा सभापति के अधिकार प्राप्त हैं। तर्क के हेतु यदि यह भी मान लिया जाये कि और भी

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

स्पष्टीकरण की आवश्यकता है, तो नियम 38-डब्ल्यू परिस्थिति के अनुसार नितांत अपर्याप्त है। मेरा निवेदन है कि इस नियम द्वारा यह यत्न किया गया है कि अपना निर्णय करते समय, परिषद् की व्यवस्था के विषय में निश्चय सुनाते समय यदि आपने कोई अनियमित कार्य किया हो तो उसे नियमित कर दिया जाये। यदि एक पल के लिये हम यह मान सकते हों कि आप अवैध रूप से कार्य करते रहे हैं—जो मुझे आशा तथा विश्वास है कि नहीं हुआ है—यदि हम एक बार यह स्वीकार कर लें कि आप अधिकारयुक्त कार्य नहीं करते रहे हैं, तो प्रस्तावित नियम 38-डब्ल्यू द्वारा दी गई शक्ति से अब तक की कार्यवाही वैध नहीं हो जायेगी। वास्तव में यदि यह मान लिया जाता है कि आपको सभापतित्व करने के कार्य के अतिरिक्त कुछ भी करने का अधिकार नहीं है, तो, श्रीमान्, उन कार्यों का क्या होगा जो आपने इस महान् परिषद् के सभापति के रूप में इस नियम के धारण से पहले किये हैं? मैंने कार्यवाही को नियमित करने का प्रयत्न किया है। मेरी धारणा है कि ऐसा संदेह अनावश्यक है; किन्तु यदि इस संदेह का कोई कानूनी आधार है, यदि इस विषय में आपको कोई संशय है, तो आपको कुछ ऐसा करना चाहिये था कि एक नया नियम 14-ए रखते, जैसा कि मैंने अपने संशोधन में सुझाया है, कि उपाध्यक्ष को कुछ अवस्थाओं में अध्यक्ष के सारे अधिकार होंगे और इसके साथ एक महत्त्वपूर्ण व्याख्या रखनी चाहिये थीं कि इस नियम का इस मान्यता से पूर्ववर्त्ती प्रभाव होगा कि यह 4 नवम्बर को पारित हुआ है अथवा उस तारीख से प्रभाव होगा जिस दिन से आपने इस परिषद् में सभापति का आसन ग्रहण करने की कृपा की थी।

नियम के एक संशोधन में, जिसमें कि केवल दो प्रावधान हैं, एक नियम 38-पी पर संशोधन तथा दूसरा एक नया नियम 38-डब्ल्यू है, इतनी तीक्ष्ण त्रुटियां हैं। मेरा निवेदन है कि इससे पता लगेगा...

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई:** उपाध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, मैंने प्रस्ताव का वह भाग (ख) अभी तक पेश नहीं किया है।

***उपाध्यक्ष:** अभी वह पेश नहीं हुआ है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं इस युक्ति को मानता हूं। किन्तु क्या मैं यह समझ लूं कि वह पेश नहीं किया जायेगा?

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई:** मैंने केवल पहला प्रस्ताव पेश किया है।

***उपाध्यक्षः** आप 'यदि' ऐसा अनुबंध क्यों नहीं लगा देते?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** 'यदि यह प्रस्ताव बाद में रखा गया तो यह बात प्रकट हो जायेगी कि इसमें उपस्थित प्रश्नों के समुचित ज्ञान का सर्वथा अभाव है। मैं व्यापक दृष्टिकोण से कुछ विचार उपस्थित कर रहा था; क्या वाक्य-विन्यास के संशोधन, अथवा जिन्हें केवल वाक्य-विन्यास के संशोधन कह कर उल्लेख किया जाता है, आशयपूर्ण संशोधनों से भिन्न होते हैं, जैसे कि वाक्य-विन्यास के संशोधन आशयपूर्ण संशोधन नहीं होते? इन अस्थिर विचारों से वे लोग संदेह में पड़ जाते हैं जिन्हें कि इस विषय का कुछ अनुभव है। मेरा निवेदन है कि समस्त परिषद् को इन नियमों के निर्माण पर विरोध प्रदर्शन करना चाहिये। हमें यह कहने का अधिकार है कि मसौदा बनाने वाले अथवा इन कानूनों के प्रस्तावक सदस्य हमारे सामने स्पष्ट विचार, स्पष्ट भाषा तथा आशयपूर्ण शब्द रखें। श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि इन नियमों में यह सब अपेक्षित गुण अनुपस्थित हैं।

श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि गुणावगुण के विचार से उपनियम (2) निकाल देना चाहिये। केवल इसी कारण कि एक संशोधन शाब्दिक, व्याकरण-सम्बन्धी अथवा रूप संबंधी है, आपसे उसे रोक देने के लिये नहीं कहा जा सकता। मेरा निवेदन है कि आपके पास इस समय जो अधिकार हैं हमने अब तक जो महान् परम्परा स्थापित की है, तथा हमारे सामने हाउस आफ कामन्स एवं अन्य संसदों के जो महान् नियम हैं, वही सर्वथा पर्याप्त हैं। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात तो सदस्यों तथा प्रस्तावकों की सद्भावना है। इस विषय में जहां तक मेरा संबंध है, श्रीमान्, मैं परिषद की ऐसी छोटी से छोटी इच्छा का पालन करने के लिये पूर्णतया उद्यत हूं, जो सार्वजनिक अथवा निजी रूप में, उचित ढंग से व्यक्त की जाये। इसी प्रकार की जो बहुत सी त्रुटियां सब स्थानों पर विधान में पाई जाती हैं उनके विषय में आप क्या करेंगे? यह बात नहीं है कि इन त्रुटियों से विधेयक के विख्यात लेखकों की शक्ति अथवा वाक्य-विन्यास की कमी प्रकट होती है, किन्तु प्रत्येक विधेयक को दोहराने की आवश्यकता होती है। हमारे यहां दूसरी सभा नहीं है। विधेयक विशेष-समिति में नहीं गया है। पहले एक स्थान पर मैंने विशेष-समिति का सुझाव रखा था; वही ऐसा स्थान है जहां वाक्य-रचना के संशोधनों तथा अन्य बातों पर ठंडे दिल से तथा उचित रूप से वाद-विवाद हो सकता है। मेरा सुझाव इस आधार पर रोक दिया गया था कि वह विलम्बकारी है। कुछ संशोधनों को

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

प्रमुख सदस्यों ने केवल विलम्बकारी अथवा मूर्खतापूर्ण (of frivolous nature) बताया है। मेरे विचार में 'मूर्खतापूर्ण' शब्द इस परिषद् के किसी सदस्य के लिये प्रयुक्त नहीं हो सकता। यदि कोई वस्तु मूर्खतापूर्ण है, तो उसे रोक देने के लिये नियमों में आपके पास पर्याप्त अधिकार विद्यमान हैं। मेरा निवेदन है कि प्रत्येक संभावित दृष्टिकोण से, सामान्य सुविधा के दृष्टिबिंदु से तथा इन नियमों की सामान्य अच्छाई के दृष्टिकोण से, जो कि अब तक अच्छे सिद्ध हुए हैं, यह नये नियम अस्वीकार हो जाने चाहियें।

श्रीमान्, क्या मुझे सारे संशोधन पेश करने हैं?

***उपाध्यक्ष:** मेरे विचार में अच्छा हो यदि आप उपनियम (2) तथा (3) के विषय में अपने सारे संशोधन पेश कर दें। यदि आप कुछ और भी कहना चाहते हैं तो आप ऐसा करने के लिये स्वतंत्र हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** संशोधन सं. 2 के विषय में, जो कि मैं पेश कर चुका है, मैंने एक नया खंड रखने का सुझाव दिया है कि किसी संशोधन को रद्द करने से पूर्व आप उस सदस्य को, जिसका कि संशोधन रद्द किया जाये, अपने विचार व्यक्त करने तथा अपनी युक्तियां बताने का अवसर देने की कृपा करेंगे। मुझे इसमें संदेह नहीं है कि नियम में उल्लिखित कारण से किसी संशोधन को रद्द करते समय, इस बात को ध्यान रखते हुए कि आपके साथ बल से काम लेने की चेष्टा की जा रही है, मेरे विचार में यह प्रावधान आवश्यक होना चाहिये। किन्तु मैं यह परिषद् की सद्भावना तथा आपकी न्याय एवं समव्यवहार की सहज भावना पर भी छोड़ सकता हूं जो कि आपने अब तक प्रदर्शित की है। तत्पश्चात् मैं संशोधन सं. 6 पर आता हूं।

मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

'That in the proposed sub-rule (2) of rule 38-P, for the word 'amendments', the words 'such amendments' be substituted.''

(कि नियम 38-पी के प्रस्तावित उपनियम (2) में 'संशोधन' शब्द के स्थान पर 'ऐसे संशोधन' ये शब्द रख दिये जायें।)

यह केवल शाब्दिक है

तत्पश्चात् मैं सं. 8 पेश करता हूं:

''That in the proposed sub-rule (2) of rule 38-P, the comma after the word 'verbal' and the word 'grammatical' be deleted.''

(कि नियम 38-पी के प्रस्तावित उपनियम (2) में 'शाब्दिक' शब्द के बाद का अर्धविराम तथा 'व्याकरण-संबंधी' यह शब्द निकाल दिया जाये।)

मेरा निवेदन है कि जो कार्यालय अथवा अधिकारी इस संशोधन विषयक कार्य से संबंधित रहा है, वह अर्धविराम तथा एक शब्द निकाल देने संबंधी इस प्रकार की अभिव्यंजना से प्रकट रूप में अपरिचित प्रतीक होता है। वास्तव में स्पष्टता के अभिप्राय से यह सर्वथा स्वीकार्य है जैसा कि कानूनों की रचना के विषय में समस्त प्रमुख लेखकों ने सिद्ध किया है। मेरा निवेदन है कि यह प्रायः होता है कि यदि मैं 'व्याकरण-संबंधी' इस शब्द को निकाल देने का प्रस्ताव करूं तो परिणाम यह होगा कि अर्धविराम रह जायेगा जो त्रुटिपूर्ण है। वे दोनों साथ-साथ हैं किन्तु कार्यालय ने इन्हें पृथक् संशोधन माना है। तत्पश्चात् श्रीमान्, मैं संशोधन सं. 9 भी पेश करता हूं:

''That in the proposed sub-rule (2) of rule 38-P the words 'and to remit them to the Drafting Committee' be added at the end.''

(कि नियम 38-पी के प्रस्तावित उपनियम (2) के अंत में 'और उन्हें मसौदा-समिति को भेज देने का अधिकार होगा' ये शब्द जोड़ दिये जायें।)

मैं अपनी स्थिति को भली प्रकार नहीं जानता। निजी रूप में मैं सुन रहा हूं कि यह प्रस्तावित नियम मेरे ही कारण बन रहे हैं। मैं ही इनका लक्ष्य हूं। यह एक अपरोक्ष बात है कि मैं ही इनका लक्ष्य हूं—दुखी लक्ष्य नहीं, सुखी लक्ष्य हूं। यदि ऐसा है तो मुझे माननीय महिला सदस्य के प्रति अत्यंत कृतज्ञता प्रकाशित करनी चाहिये, जिन्होंने मुझे यह अद्वितीय सम्मान प्रदान किया है, अर्थात् नितांत अवैधानिक, नितांत अप्रजातंत्रीय नियम का सुझाव रखा है जिसके द्वारा परिषद् के एक सदस्य, विशेष सदस्य में श्रद्धा का अभाव प्रकट किया गया है और परिषद्

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

के कार्य-संचालन के विषय में सभापति की योग्यता में भी—जो भी उस समय सभापति हो—कुछ परोक्ष संदेह प्रकट किया गया है। श्रीमान्, इन परिस्थितियों में मैं इसे अपना उच्च सम्मान समझता हूं। मेरा उद्देश्य संशोधन स्वीकार करवाना नहीं है। मेरा उद्देश्य विनीत रूप में सुधारों के सुझाव रखना है। हो सकता है कि अंतिम विश्लेषण से तथा अधिक विचार करने पर मैं गलत सिद्ध हो जाऊं तथा मेरे संशोधन आशयहीन सिद्ध हो जायें। यदि विचार करने के पश्चात् वे रोक दिये जायें तो मुझे प्रसन्नता होगी, किन्तु ऐसा नहीं हो रहा है। मैं अपने समस्त संशोधन पेश नहीं कर रहा हूं। विभिन्न समूहों में सदृश संशोधन है और मैंने उनमें से केवल एक संशोधन रखा, और शेष मैंने पेश नहीं किये क्योंकि मैं जानता हूं कि उन्हीं तर्कों की पुनरावृत्ति होगी। इन परिस्थितियों में मेरा सविनय निवेदन है कि नियम एक अथवा दो सदस्यों के विरुद्ध लक्ष्य करके नहीं बनाने चाहिये। नियम के भाग (3) का लक्ष्य कदाचित् परिषद् के एक अन्य माननीय तथा उत्साही सदस्य प्रोफेसर के.टी. शाह के विरुद्ध है। वास्तव में यही भावना स्वतंत्र रूप में व्यक्त की जा रही है। श्रीमान्, मैं नहीं समझता कि सदस्यों का मुंह बंद करने के लिए आपको नियम-शक्ति दी जानी चाहिये। यदि यह नियम परिषद् में एकमत से स्वीकृत भी हो जायें तो भी आपको कारण पूछे बिना, संशोधनों का अभिप्राय तथा आशय जाने बिना उन नियमों का प्रयोग नहीं करना चाहिये। मेरा निवेदन है कि संशोधनों को उनका रूप देखकर ही रोका नहीं जा सकता। हो सकता है, और बहुधा ऐसा होता है कि, उनमें मूल्यवान आशय हो। मेरा निवेदन है कि संशोधनों की इस परिषद् में जो गति होती है उससे यह भावना पक्की हो जाती है। जब हम विधान का निर्माण कर रहे हैं, जब हम कुछ मान्य प्रतिबंधों के साथ विचार, अभिव्यक्ति तथा कार्य की स्वतंत्रता की व्यवस्था कर रहे हैं, तब यहां आप वाद-विवाद की स्वतंत्रता को भी रोक रहे हैं, कम कर रहे हैं, एक सदस्य की स्वतंत्रता को कम कर रहे हैं जिसने कि मसौदे में सुधार करने के लिये अत्यंत क्षुद्र रूप में तुच्छ प्रयास करने में, कुछ समय एवं शक्ति का व्यय किया है। किन्तु मैं इससे हतोत्साह नहीं होता कि वे स्वीकृत नहीं होते। दार्शनिकों के अनुसार अच्छा कार्य स्वयमेव अपना पुरस्कार होता है और मुझे प्रसन्नता होगी यदि अंततोगत्वा यह नियम स्वीकृत हो जायें तथा मेरे संशोधन ऐसे ही ठुकरा दिये जायें। यदि मैंने अपना कर्त्तव्य पालन

करने का प्रयत्न किया है तो मुझे प्रसन्नता होगी। यदि मुझे रोक दिया गया तो यह इस में मेरा कोई दोष न होगा। उस अवस्था में उत्तरदायित्व सदस्यों का होगा तथा श्रीमान्, आपका होगा। मेरा निवेदन है कि यह नियम वापस ले लिये जाने चाहियें। वाक्य-विन्यास के दृष्टिकोण से उनकी रचना त्रुटिपूर्ण है तथा वे भ्रमात्मक हैं। उनमें बहुत बुरी दुर्गन्ध आती है। इन नियमों के पीछे कुछ उच्च-सत्ता (हाई कमांड) का सा आभास होता है। मेरा निवेदन है कि इनसे निरंकुशता (totalitarianism) सी प्रकट होती है। यदि आप अल्पमतों के उचित वाद-विवाद को भी सहन नहीं करते तो आप जिस स्वतंत्रता की कल्पना करते हैं वह एक प्रहसन होगी—मैं 'अल्पमत' यह शब्द साम्प्रदायिक आशय से प्रयोग नहीं कर रहा हूं, अपितु संख्या के आशय से कह रहा हूं। यदि विधान-परिषद् हमारे समक्ष ऐसा उदाहरण रखेगी तो सरकार के अनुजीवी, अनेक प्रांतीय प्राधिकारी अल्पमतों को कुचल डालेंगे और यह लोकतंत्र के लिए घातक है। लोकतंत्र की यही अच्छाई है कि यह अल्पसंख्यकों को स्वतंत्रता से अपने विचार-अभिव्यक्त करने का अधिकार देता है केवल प्रसंगानुकूलता तथा अन्य सुविख्यात नियमों का ही प्रतिबंध होता है। शिष्टता के नाते, सुरूपता के नाते तथा परिषद् की कीर्त्ति के नाते इन कृत्रिम नियमों को अस्वीकार कर देना चाहिये। श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि इन वाद-विवादों को सारे संसार में पढ़ा जायेगा और मेरा निवेदन है कि हमें चाहिये कि...

***उपाध्यक्ष:** मैं आपको बता दूं कि यह बातें अंत में कहनी चाहियें। आपके नाम में बहत से संशोधन हैं, आपको पहले उन्हें पेश करना चाहिये।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि नियम 38-पी का प्रस्तावित उपनियम (3) निकाल दिया जाये।''

बेहूदे शब्द 'नहीं' के विषय में संशोधन सं. 13 को मैं पेश नहीं करता। मैं इसे संशोधन की प्रस्तावक माननीय सदस्य पर छोड़ देता हूं कि वे इसे रखें तथा कुछ आशय निकालने का यत्न करें।

***उपाध्यक्ष:** श्री विश्वनाथ दास, क्या आप सं. 15 पेश कर रहे हैं? यदि कर रहे हों तो श्री नजीरुद्दीन उसे पेश नहीं करेंगे।

***श्री विश्वनाथ दास:** मैं इसे पेश करूंगा।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** इसके विषय में मेरे जो विचार हैं, मैं उन्हें व्यक्त कर दूं। मेरे माननीय मित्र ने कृपा करके संशोधन सं. 15 को पेश करने की इच्छा प्रकट की है, इस संशोधन के विषय में मैं कह सकता हूं कि बिना वाद-विवाद के आगे बढ़ना उपयुक्त न होगा। यह प्रावधान, कि आप कुछ संशोधनों को बिना पर्यालोचन के ही चुनेंगे, अभिप्राय-हीन तथा आशयहीन है। वाद-विवाद होना चाहिये। आप परिषद् से वाद-विवाद के बिना अपना मत देने के लिये कैसे कह सकते हैं? आखिर लोकतंत्र का अर्थ है वाद-विवाद से, विचारों के स्वतंत्र आदान-प्रदान से शासन चलाना, किन्तु यहां यह प्रयत्न किया जा रहा है कि आपको बिना वाद-विवाद ही संशोधन चुनने का अधिकार दिया जा रहा है।

तत्पश्चात्, श्रीमान्, मैं संशोधन सं. 17 पेश करता हूं:

कि ''नियम 38-पी के प्रस्तावित उपनियम (3) के पश्चात्, निम्न प्रावधान जोड़ दिया जाये:

'Provided that before the President so selects any amendment, the member who has given notice of any amendment shall have the right to explain the nature and purport of the amendment.' ''

(पर शर्त यह है कि अध्यक्ष इस प्रकार कोई संशोधन चुने, उससे पूर्व किसी सदस्य को, जिसने कि संशोधन की सूचना दी हो, यह अधिकार होगा कि वह अपने संशोधन का स्वरूप तथा आशय समझा सके।)

मैंने अपना अभिप्राय नितांत स्पष्ट कर दिया है। मेरा निवेदन है कि मैंने जितने आरक्षण सुझाये हैं वे सब आवश्यक है, अथवा हमें विद्यमान नियमों से संतोष करना चाहिये।

श्रीमान्, यदि ऐसी त्रुटियां हों जैसी कि मैंने बताई हैं तो क्या हम विधान को अशुद्ध ही छोड़ दें तथा विधान में इतने दोष एवं कमियों को रहने दें? अथवा क्या हमें मसौदा-समिति से कहना चाहिये कि उन्हें दोहराये तथा जहां आवश्यक हो ठीक कर दे? क्या कार्य प्रणाली होनी चाहिये और किस प्रकार के संशोधनों को मसौदा-समिति पर छोड़ा जाना चाहिये? यदि आप किसी सदस्य को अपने संशोधन का अर्थ तथा आशय समझाने का अवसर नहीं देते तो मसौदा-समिति उन्हें

कैसे समझेगी? क्या उसे मसौदा-समिति के समक्ष खड़े होकर नाचना होगा, अथवा उसका भक्त बनना होगा अथवा वह वादी के समान-मसौदा समिति के समक्ष विनीत भाव से निवेदन करेगा? श्रीमान्, विधान में से दोष निकाल देने के लिये यह प्रबल युक्तियां है। मैं पर्याप्त कह चुका हूं और यदि इससे परिषद् को मेरी बात नहीं जंचती और मेरी बात रद्द कर दी जाती है, तो मैं हर्षपूर्वक परिषद् के निर्णय के सामने नतमस्तक हो जाऊंगा, यह जानते हुए कि मैंने अपना कर्त्तव्य पूरा किया है। श्रीमान्, धन्यवाद।

***उपाध्यक्षः** मुझे परिषद् को सूचित करना है कि मेरे हाथ में हमारे अध्यक्ष का एक अधिकार-प्रदान-पत्र है, जिसे मैं पढ़ कर सुनाऊंगा और मेरे विचार में उससे बहुत सा भ्रम निवारण हो जायेगा। पत्र इस प्रकार है:

> ''मैं इस पत्र द्वारा उपाध्यक्ष डा. एच.सी. मुकर्जी को विधान-परिषद् के नियमों के छठे अध्याय के 38-यू तथा 38-वी नियम को छोड़ कर शेष सब नियमों के अन्तर्गत अपनी सारी शक्तियां तथा कर्त्तव्य प्रदान करता हूं।''

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, मैं एक बात जानना चाहता हूं। मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में वक्ताओं को सीमित समय दिया जायेगा? यदि नहीं, तो मेरा सुझाव है कि आपको अवधि नियत करने का अधिकार होना चाहिये जिससे कि बेकार वक्तृतायें न हो सकें।

***उपाध्यक्षः** ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर मेरी इच्छा यह नहीं है कि वक्ताओं को दिये जाने वाले समय को मैं सीमित कर दूं। किसी प्रकार का प्रतिबंध तभी लगाया जायेगा, जब कोई वक्ता प्रसंग से अति असंगत बातें करने लगेगा।

अब श्री कामत संशोधन सं. 3 पेश कर सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** उपाध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, मेरी माननीया मित्र श्रीमती दुर्गाबाई ने जो प्रस्ताव रखा है, उसका अभिप्राय अध्यक्ष को कुछ असाधारण शक्तियां देना है और इसके परिणामस्वरूप इस परिषद् के सदस्यों के स्वाभाविक अधिकार

[श्री एच.वी. कामत]

समाप्त अथवा सीमित होते हैं, चाहे वे अंतर्वर्त्ती अधिकार हों अथवा अब तक हमारे द्वारा स्वीकृत नियमों के अंतर्गत प्रदत्त हमारे अधिकार हों। मुझे विश्वास है कि यहां मेरे साथियों में से कोई भी, मेरा कोई भी साथी, अपने किसी भी अधिकार को सहज ही अथवा स्वेच्छा से समर्पित करने के लिये उद्यत नहीं होगा, और मुझे समानरूप से यह भी भरोसा है कि अध्यक्ष तथा श्रीमान्, आप भी, इस परिषद् के सदस्यों के अधिकारों के समर्थन के लिये उत्सुक रहेंगे, जैसे कि अब तक भी सदा आप रहे हैं। अतएव मैं यहां अपने साथियों से प्रार्थना करना चाहता हूं कि वे इस प्रस्ताव पर, जो कि आज हमारे सामने है, अत्यंत ध्यानपूर्वक विचार करें, और श्रीमान्, मैं आप से अनुरोध करता हूं कि आप इस प्रस्ताव पर पूरी तरह से वाद-विवाद होने दें।

अब, श्रीमान्, मैं अपने संशोधन को लेता हूं। यह केवल एक शाब्दिक संशोधन है जिसका अभिप्राय इस खंड अथवा उप-नियम का अब तक स्वीकृत नियमों के साथ सामंजस्य स्थापित करना है। यदि परिषद् नियम 31 के उप नियम (4) की ओर ध्यान देगी, तो आप देखेंगे कि वहां इस प्रकार की भाषा प्रयुक्त हुई है:

> ''The Chairman may disallow any amendment which he considers to be frivolous or dilatory.''
>
> (सभापति किसी ऐसे संशोधन को पेश होने से रोक सकता है जिसे वह हल्का अथवा विलम्बकारी समझे।)

किन्तु यहां ऐसी अभिव्यंजना है कि ''The President shall have the power to disallow...'' (अध्यक्ष को...रोक देने का अधिकार होगा) यह बहुत कुरूप वाक्य-रचना है। मैंने ऐसी वाक्य-रचना किसी नियम में नहीं देखी जो कि इस पुस्तिका में है जो कि हमारे सबके पास है—कार्यप्रणाली तथा स्थायी व्यवस्था के नियम (Rules of Procedure and Standing Orders)। ऐसा कहना अत्यधिक उपयुक्त होगा कि ''अध्यक्ष... संशोधनों को रोक सकते हैं, आदि''। इस प्रस्तावित उपनियम (2) के विषय में मुझे एक बात कहनी है। इसका अभिप्राय अध्यक्ष को संशोधनों को रोक देने का विशेष अधिकार देना है। किन्तु रोक दिये जाने के बाद उन संशोधनों का क्या होगा? क्या उन्हें रद्दी की टोकरी में फेंक दिया

जायेगा, अथवा इससे भी बुरी किसी जगह। नियम 38-आर के अंतर्गत भी विराम-संबंधी तथा हाशिये के शब्दों सम्बन्धी परिवर्तनों को मसौदा-समिति के पास भेजना होता है। यदि ऐसा है तो मेरी समझ में नहीं आता कि शाब्दिक, व्याकरण सम्बन्धी तथा रूप सम्बन्धी संशोधनों के विषय में भी हम ऐसा ही क्यों न करें। मुझे यह देखकर प्रसन्नता है कि मेरे माननीय मित्रों ने अर्थात् श्री पातस्कर तथा श्री गुप्त ने इस आशय के संशोधनों की सूचना दी है और मुझे आशा है कि परिषद् इस उपक्रम को मान लेगी, कि नियम 38-पी (2) के अंतर्गत रोके हुए समस्त संशोधन विचारार्थ तथा आवश्यक कार्यवाही के हेतु मसौदा-समिति को भेज दिये जायेंगे।

तत्पश्चात्, श्रीमान्, मैं संशोधन सं. 7 पेश नहीं करूंगा क्योंकि यदि मसौदा-समिति को भेजने के सुझाव वाला संशोधन स्वीकार हो जाता है तो इसको पेश करना अपेक्षित नहीं है।

मेरा अगला संशोधन सं. 11 है, जो नियम 38-पी (3) के विषय में है, और इसमें मेरा अभिप्राय ''प्रधान को...चुनने का अधिकार होगा, आदि'' इन शब्दों के स्थान पर ''चुन सकते हैं आदि'' शब्द रखने का है। मैंने अपने पहले संशोधन के विषय में जो तर्क दिये थे वे इस पर भी समान शक्ति से लागू होते हैं।

अब मैं अपने संशोधन सं. 12 को लेता हूं जिसका आशय है कि 'similar (सदृश)' शब्द से पहले 'same or (उसी अथवा)' यह शब्द जोड़ दिये जायें। 'सदृश अभिप्राय के संशोधनों' ऐसा कहने के स्थान पर मेरे विचार में 'उसी अथवा सदृश अभिप्राय के संशोधनों' ऐसे कहना अधिक अर्थ-बोधक है।

मेरा अगला संशोधन सं. 14 है जिसका अभिप्राय यह है कि जहां भी 'shall' शब्द आये वहां उसके स्थान पर 'may' शब्द रख दिया जाये। विद्यमान नियमों के अधीन अध्यक्ष को दो प्रकार के अधिकार हैं—विवेकाश्रित तथा आदेशमूलक। हमने कार्यवाही के जो नियम स्वीकार किये हैं उनमें आप देखेंगे कि आदेशमूलक अधिकारों के सम्बन्ध में 'shall' 'गा' शब्द प्रयुक्त हुआ है (यथा करेगा, आदि) और 'विवेकाश्रित' अधिकारों के विषय में 'may' ('सकता है') शब्द प्रयुक्त हुआ है। नियम 33 में उल्लिखित है कि अध्यक्ष को कोई 'स्वविवेक' का अधिकार

[श्री एच.वी. कामत]

नहीं है तथा उसे प्रस्ताव पर मत लेने ही होंगे। यहां ऐसा है कि जब अध्यक्ष विचार करने तथा मत लेने के लिये कोई संशोधन चुन ले, जो कि उनके विवेकानुसार उपयुक्त अथवा व्यापक अर्थ वाले हों, तो अन्य सब संशोधन जो कि इस प्रकार चुने नहीं गये हों उन्हें ऐसा माना जायेगा कि वे पेश हो चुके हैं तथा उन पर मत लिये जायेंगे। प्रधान को इस विषय में स्वविवेकानुसार कार्य करने का अधिकार नहीं दिया गया है और 'may' के स्थान पर 'shall' रख देने से प्रस्तावित उपनियम का अर्थ ठीक हो जायेगा।

मेरे विचार में यहां भी प्रस्तावित उपनियम की वाक्य-रचना अतीव त्रुटिपूर्ण है। यहां यह कहा गया है कि कोई संशोधन, जो इस प्रकार चुना न गया हो, यदि वह वापिस न ले लिया गया हो, तो ऐसा समझा जायेगा कि वह पेश हो चुका है। किन्तु जब तक कोई संशोधन परिषद् में पेश न कर दिया जाये वह वापिस नहीं लिया जा सकता; वह तब केवल परिषद् की अनुमति से वापिस लिया जा सकता है अतएव, मैं नहीं समझता कि प्रस्तावित उप-नियम का अर्थ क्या समझा जाये, अर्थात् कोई संशोधन, यदि वह वापिस न ले लिया जाये, तो ऐसा समझा जायेगा कि वह पेश हो चुका है। वापिस लेने का प्रश्न तो तभी उठता है जब कि वह परिषद् में पेश हो चुका हो; अतएव उपनियम के इस अंश को शुद्ध करके लिखना होगा तथा इसका रूपान्तर करना होगा।

और मैं यह भी समझने में असमर्थ हूं कि किसी प्रस्ताव के लिये यह कैसे समझा जा सकता है कि वह पेश हो चुका है, जब कि वह वास्तव में परिषद् में पेश नहीं किया गया है। यह एक विलक्षण कार्य-प्रणाली है, जो मुझे विश्वास है कि संसार के और किसी विधान-मंडल में मान्य नहीं होगी। जब तक एक संशोधन परिषद् में वास्तव में पेश न हो तब तक अध्यक्ष यह नहीं मान सकता कि वह इस प्रकार पेश हो चुका है। मेरा निवेदन है कि यह एक आधारभूत बात है और मुझे आशा है कि परिषद् इस संशोधन को इसके वर्तमान रूप में स्वीकार नहीं करेगी। यदि कोई सदस्य संशोधन पेश नहीं करना चाहता तो वह ऐसा कह देगा; और यदि वह इसे पेश करना चाहता है तो उसे परिषद् में अपना संशोधन पेश करने का अवसर अवश्य मिलना चाहिये और यदि संशोधन इस प्रकार पेश नहीं किया जाता तो ऐसा मानना चाहिये कि वह सर्वथा पेश नहीं हुआ है।

यदि वह पेश नहीं किया जाये तो उस पर मत लिये ही नहीं जा सकते। अतएव यदि कोई सदस्य संशोधन रखना चाहता है तो वह परिषद् में नियमित रूप से पेश होना चाहिये। प्रस्तावित उपनियम का अभिप्राय एक सदस्य के परिषद् में संशोधन रखने के अधिकार को समाप्त करना है और अप्रत्यक्ष रूप से वह अधिकार अध्यक्ष को देना है। मैं नहीं समझ सकता कि यह कैसे हो सकता है—क्या यह किसी प्रकार के छू-मंतर अथवा जादू से हो सकता है? यदि हम इस कार्यप्रणाली को अपना लें तो इससे परिषद् का अधिक समय खराब हो सकता है और यह उपचार रोग से भी अधिक बुरा होगा। अतएव मैंने एक शर्त लगाने की सूचना दी है, संशोधन संख्या 16, जो इस प्रकार है:

''That in the proposed sub-rule (3) of rule 38-P after the words 'without discussion' at the end, the following proviso be added :

'Provided that a member whose amendment has not been selected for consideration shall, if he so desires, be permitted by the President to state why his amendment should be considered.''

[''कि नियम 38-पी के प्रस्तावित उप-नियम (3) में अंतिम शब्दों के पश्चात् निम्न शर्त जोड़ दी जायें:

'पर किसी सदस्य को, जिसका कि संशोधन इस प्रकार विचारार्थ चुना न गया हो, यदि वह (सदस्य) चाहे, तो अध्यक्ष उसे यह बताने की अनुमति देगा कि उसके संशोधन पर क्यों विचार किया जाना चाहिये।' '']

श्रीमान्, इसका अभिप्राय इस परिषद् के सदस्य के स्वाभाविक अधिकारों की रक्षा करना तथा उनका समर्थन करना है और मुझे विश्वास है, श्रीमान्, कि इस परिषद् के सदस्यों के किसी स्वाभाविक अधिकार को समाप्त अथवा सीमित करना आप तो कदापि नहीं चाहेंगे।

अपनी बात समझाने के लिए मैं केवल यही कहूंगा कि प्रस्तावित उपनियम 3 पर यह संशोधन आशयपूर्ण संशोधनों के विषय में है। अतएव, मुझे आशा है कि यहां कोई भी सदस्य परिषद् में संशोधन रखने का अपना अधिकार अध्यक्ष को समर्पित नहीं करेगा।

[श्री एच.वी. कामत]

यह तर्क दिया जा सकता है कि अध्यक्ष विवेक से ऐसा ही संशोधन चुनेंगे, जिसमें कि वे सारे संशोधन आ जायेंगे, जो उस विषय पर सूचित किए गए हैं, अथवा जिसका सदृश आशय है। कदाचित् यह बात उस अवस्था में स्वीकार्य हो सकती है, जब कि उन सदस्यों को, जिन्होंने कि संशोधन भेजे हैं, अध्यक्ष वाद-विवाद में भाग लेने की प्राथमिकता दें। किन्तु, श्रीमान्, मैं तो उसे भी स्वीकार नहीं करूंगा, और प्रत्येक सदस्य को जो अपना संशोधन पेश करना चाहे, उसे परिषद् में पेश करने का अधिकार प्राप्त होना चाहिये।

उदाहरण के लिए उन संशोधनों को लीजिये जो कि हमारे विधान की प्रस्तावना पर सुझाये गये हैं। बहुत से संशोधनों में ईशस्तुति है। कदाचित मसौदा-समिति अथवा परामर्शदात्री समिति अथवा उच्च स्थानों पर आसीन किन्ही अन्य व्यक्तियों की मंत्रणा पर अध्यक्ष इनमें से कोई एक संशोधन चुन सकते हैं। किन्तु यदि आप उन पर विचार करें तथा ध्यान दें, तो आप देखेंगे कि प्रत्येक संशोधन में ईशस्तुति के अतिरिक्त कुछ अन्य बातें भी हैं, जो दूसरे संशोधनों में नहीं हैं। और यदि एक संशोधन चुन लिया जाये तथा शेष नहीं चुने जायें, तो निस्संदेह जिन सदस्यों ने अन्य संशोधनों की सूचना दी है, उन्हें अपना दृष्टिकोण परिषद् के सामने रखने का कोई अवसर नहीं मिलेगा।

अतएव मैं परिषद् तथा आपसे अनुरोध करता हूं कि इस प्रस्ताव को उस रूप में पारित नहीं करें जिस रूप में वह परिषद् में पेश हुआ है। इसके शब्दों में आमूल-चूल परिवर्तन करना होगा तथा इसकी काया-पलट करनी होगी, जिससे कि इस परिषद् के माननीय सदस्यों के अधिकारों का हनन न हो। यदि आप मुझे ऐसा कहने के लिये क्षमा करें तो मेरे मन में संदेह नहीं है कि यदि यह प्रस्ताव उसी रूप में स्वीकृत हो जाये, जिस रूप में कि यह यहां पेश किया गया है, तो भारत के अर्वाचीन इतिहास में यह पहला सार्वभौम निकाय संसार की हास्य सामग्री बन जायेगी।

***श्री विश्वनाथ दास:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''That in the proposed sub-rule (3) of rule 38-P, the words 'without discussion' be deleted.''

(''कि नियम 38-पी के प्रस्तावित उप-नियम (3) में से 'बिना वाद-विवाद के' यह शब्द निकाल दिये जायें।'')

मैं नहीं जानता कि मैं स्वयं को धन्यवाद दूं अथवा दुःख मानूं कि मेरा नाम मेरे माननीय मित्र मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के साथ अनुसूचित किया गया है, यद्यपि सर्वथा पृथक् दृष्टिकोण से ऐसा हुआ है। श्रीमान्, सर्वप्रथम तो मैं यह बात स्पष्ट कर दूं कि मैं अपनी मित्र श्रीमती दुर्गाबाई का इस संशोधन के विषय में पूर्ण समर्थन करता हूं। यह अत्यन्त आवश्यक तथा लाभदायक है। इसे हमारा पूर्ण समर्थन प्राप्त है। इसका कारण यह है कि हमें यहां तीन सप्ताह हो गये और क्या मुझे यह कहने की आवश्यकता है कि हम इन 21 दिनों की बैठकों में 21 अनुच्छेद भी पूरे नहीं कर सके हैं। बाहर सारा देश आतुरता से हमारे नये विधान की प्रतीक्षा कर रहा है, जिससे कि नयी व्यवस्था कम से कम 26 जनवरी 1949 से तो लागू हो ही जाये। उनको इसकी चिन्ता है और हम भी अपने देशवासियों के समान इस प्रकार ही चिन्तित हैं। अतएव हम इस बात के लिये चिन्तित हैं कि हमारी कार्यविधि का यह उपक्रम यथासंभव शीघ्र ही समाप्त हो जाये। उसी दृष्टिकोण से मैं अपनी मित्र श्रीमती दुर्गाबाई के प्रस्ताव का स्वागत तथा समर्थन करता हूं।

इतना कहने के पश्चात् मैं यह बताऊंगा कि मैंने इस संशोधन की सूचना क्यों दी। हम अपनी कार्यवाही के सम्बन्ध में जिस क्रम के अनुसार चलते रहे हैं, मैं उसी क्रम से वर्णन करूंगा, अर्थात् सर्वप्रथम हमने उद्देश्य विषयक प्रस्ताव पारित किया और तत्पश्चात् परिषद् के समक्ष समितियों की नियुक्ति के सम्बन्ध में प्रस्ताव रखे गये। प्रत्येक अवसर पर उन पर वाद-विवाद हुआ। समितियां बैठी और विचार हुआ और उन्होंने अपनी रिपोर्ट पेश की। रिपोर्टों पर इस परिषद् में विस्तृत वाद-विवाद हुआ—शब्दशः तथा खंडशः—और उन पर मत लिये गये। सिद्धान्त निश्चित किये गये तथा वे सब मसौदा-समिति को भेज दिये गये—जो हमारे द्वारा निर्वाचित विशेषज्ञजनों से बनाई गई थी—जिससे कि वे उन सिद्धांतों को उपयुक्त भाषा में रख दें। इन 21 दिनों में यह पता लगा कि मसौदा-समिति के माननीय सदस्यों ने यथासंभव उन देशों के विधानों से शब्द चुने तथा उन्हें अत्यन्त सावधानी एवं ध्यान से प्रयोग किया, जो कि अपने विधानों के अनुसार पीढ़ियों से कार्य कर रहे हैं। यदि अंग्रेजी भाषा में एक अर्धविराम, पूर्ण विराम, मुहावरे अथवा कोई मान्य शब्दावलि पर सन्देह हो, तो मैं कहूंगा कि उन्होंने काफी अच्छे शब्द चुने

[श्री विश्वनाथ दास]

हैं। यहां तथा अन्य स्थानों पर जो पर्यालोचन हुआ है, उससे यह बात पर्याप्त मात्रा में सिद्ध हो चुकी है। मेरा विश्वास है कि ऐसा होने पर, इस बात की कोई आवश्यकता नहीं है कि हम संशोधन के रूप में शाब्दिक, व्याकरण सम्बन्धी अथवा रूप सम्बन्धी परिवर्तनों पर समय व्यय करें।

यदि प्रत्येक अनुच्छेद पर एक दिन लगाना पड़े तो मुझे भय है कि हमें एक वर्ष से भी अधिक बैठना होगा, क्योंकि 313 अनुच्छेद हैं और आठ अनुसूचियां हैं, जिनमें से प्रत्येक में कई-कई धारायें हैं। मैं तो यह कल्पना करके भी कांप उठता हूं कि यदि हम प्रत्येक संशोधन पर, जिसकी कि सूचना आई हैं, वाद-विवाद करते रहेंगे और इस बात पर ध्यान नहीं देंगे कि संशोधन में केवल एक अर्ध-विराम, सैमीकोलन, व्याकरण सम्बन्धी त्रुटि पर ही वाद-विवाद होना है और मत लेना है, तो कितना समय लगेगा। इन परिस्थितियों में श्रीमती दुर्गाबाई ने जो प्रस्ताव रखा है, हमारे 21 दिन के अनुभव के पश्चात् वह अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है।

अध्यक्ष महोदय के विषय में तो मुझे निसंकोच कहना होगा कि, श्रीमान्, आपने हमें अपने विचारों को व्यक्त करने का पूरा अवसर दिया है, चाहे कई ओर से इसका विरोध भी किया गया, किन्तु आपने किसी भी समय किसी माननीय सदस्य को ऐसा अनुभव करने का अवसर नहीं दिया कि उसके दृष्टिकोण को परिषद् में उचितरूपेण व्यक्त करने नहीं दिया गया।

कांग्रेस दल के विषय में बोलते हुए, मैं यह कह दूं कि हम दिन-प्रतिदिन समवेत होते हैं, रविवार भी बीच में नहीं छोड़ते; दो, तीन, चार घंटे निरन्तर इन संशोधनों पर तथा अन्य संभावित एवं आवश्यक संशोधनों पर वाद-विवाद करते रहते हैं। श्रीमान्, मैं अनुभव करता हूं कि कांग्रेस दल ने जो परामर्श-समिति नियुक्त की थी, वह अपना कार्य सुचारू रूप से कर रही है और इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि नये संशोधन क्यों परिषद् में रखे गये हैं, उन पर वाद-विवाद हुआ है तथा वे स्वीकृत हुए हैं, यद्यपि किसी माननीय सदस्य ने उनकी सूचना नहीं दी थी।

इन सब बातों से यह सिद्ध होता है कि इस विषय में पर्याप्त सावधानी से काम लिया जा रहा है तथा हमारी यह उत्कंठा है कि एक समुचित विधान का निर्माण हो।

श्रीमान्, श्रीमती दुर्गाबाई ने जो प्रस्ताव उपस्थित किया है वह अत्यन्त व्यापक हैं इसमें उचित वाद-विवाद के लिए स्थान रखा गया है, और सभापति में पूर्ण विश्वास प्रकट किया गया है कि वे सदस्यों को प्रत्येक प्रश्न के समस्त अंगों पर वाद-विवाद करने का पर्याप्त अवसर देंगे। इसमें 'व्यापक संशोधन' की चर्चा की गई है। यह सुस्पष्ट है। एक उदाहरण लीजिये। मान लीजिये संशोधन संख्या 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7 और 8 की सूचना प्राप्त हुई हैं। उपाध्यक्ष संख्या 8 अथवा 7 और 8 को चुन लेते हैं। उन पर पूर्णतया वाद-विवाद होगा और उन पर मत लेने से पूर्व परिषद् के समक्ष सब प्रकार के विचार उपस्थित किये जायेंगे। किन्तु मैं यह नहीं जानता कि श्रीमती दुर्गाबाई प्रस्तावित उपनियम के अंत में यह क्यों कहती है कि 'बिना वाद-विवाद के (उस पर मत लिये जा सकते हैं)'। बिना वाद-विवाद के तो कुछ भी नहीं किया जा रहा है। हम सब बातों पर वाद-विवाद करते हैं। व्यापक संशोधनों पर वाद-विवाद हो जाने के पश्चात् वाद-विवाद के लिये कुछ भी शेष नहीं रह जाता है और इसी कारण मैंने 'बिना वाद-विवाद के' इन शब्दों के निकाल देने के लिये अपना संशोधन रखा है। मेरा विचार मेरे मित्र मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के समान नहीं है कि किसी संशोधन पर बिना वाद-विवाद के मत लिये जाते हैं। यह इस माननीय परिषद् का अपमान है और ऐसा कदापि नहीं होता। संविधान-परिषद् की कार्यप्रणाली विधान-मंडलों की कार्यप्रणाली से भिन्न होती हैं संविधान-परिषद् की अपनी कार्यप्रणाली है जिसके अनुसार संकल्पों और प्रस्तावों पर वाद-विवाद के लिये पर्याप्त क्षेत्र होता है। यदि हमारे मित्र विधान-निर्माण के लिए उतना ही समय लेना चाहते हैं जितना कि अठारहवीं शताब्दी में अमरीका के राज्यों के प्रतिनिधियों ने लिया था, तो हमें इस पर एक-दो वर्ष अथवा और भी अधिक समय लगाना होगा। क्या मेरे मित्र इस कार्य के लिए उतना समय लगाने के लिए उद्यत तथा उत्सुक हैं? मैं कहता हूं कि देश विधान के लिए उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहा है। हम यथासंभव शीघ्र 1935 के इस अधिनियम की जीवित दाह-क्रिया कर देना चाहते हैं। हम उपयोजनायें कब तक करते रहेंगे? अतएव मैं अपने मित्रों से प्रार्थना करता हूं कि वे परिषद् के समक्ष उपस्थित प्रस्ताव को स्वीकार कर लें; हां, 'बिना वाद-विवाद के' इन शब्दों के बिना ही स्वीकार करें क्योंकि यहां कुछ भी बिना वाद-विवाद के नहीं होता।

[श्री विश्वनाथ दास]

श्रीमान्, इस व्यस्त संसार में रह कर हम विधान पर इतना समय व्यतीत नहीं कर सकतें, जो कि यथासमय परिवर्तित भी किया जा सकता है। इस विधान में परिवर्तन करने के संबंध में जो प्रावधान रखे गये हैं वे अन्य विधानों से अधिक सरल हैं। इन परिस्थितियों में, इस सम्बन्ध में कोई चिंता नहीं होनी चाहिए।

अपनी वक्तृता समाप्त करने से पहले मैं श्रीमद्भागवत की एक कथा उद्धृत करना चाहता हूं। सम्राट खट्वांग को स्वर्ग ले जाया गया, तो पता चला कि अभी पृथ्वी पर उनके जीवन के कुछ निमिष अर्थात् सैकिंड शेष थे। वह स्वर्ग से पृथ्वी की ओर भाग आये क्योंकि उन शेष कुछ सैकिंडों में भी वे अपनी प्रजा की सेवा करना चाहते थे। हमें इससे क्या शिक्षा लेनी चाहिए? आज जब कि देश भर में कष्ट, कठिनाइयां तथा क्लेश हैं, क्या हम यहां लम्बे समय तक विरामों पर वाद-विवाद करते रहेंगे? हम इसे विशेषज्ञों की मसौदा-समिति पर क्यों नहीं छोड़ सकते, जिन्होंने कि इस पर अपना काफी मूल्यवान तथा लाभप्रद समय व्यय किया है? इस कारण मैं अपने मित्रों से अनुरोध करता हूं कि मेरे सुझाये हुए संशोधन के साथ इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लें।

इन थोड़े से शब्दों के साथ मैं अपना संशोधन पेश करता हूं।

***उपाध्यक्षः** अब इन संशोधनों पर व्यापक वाद-विवाद हो सकता है।

श्री दामोदर स्वरूप सेठ (संयुक्तप्रांत : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, आपकी अनुमति से और अत्यंत खेद तथा दुःख के साथ मैं माननीया श्रीमती दुर्गाबाई के रखे हुए प्रस्ताव का विरोध करना चाहता हूं और श्रीमान्, मैं इसका विरोध अपनी सारी शक्ति से करना चाहता हूं। श्रीमान्, मुझे आश्चर्य है कि हम स्वतंत्र-स्वाधीन भारत के विधान के मसौदे पर पूरी गम्भीरतापूर्वक तथा शांतिपूर्वक विचार कर रहे हैं अथवा हम एक मामूली कानून को शीघ्रता से पारित कर रहे हैं जो कि एक विशेष तिथि तक अवश्य स्वीकार हो जाना चाहिए अन्यथा आकाश गिर पड़ेगा तथा पृथ्वी अपने ध्रुव के चारों और परिक्रमा करना बंद कर देगी। अब तक भी बहुत से संशोधनों को बहुमत दल ने रोक दिया है तथा गिरा दिया है और वे भविष्य में भी बहुत से संशोधनों को रोक देंगे। अब यह प्रस्ताव रखा गया है कि नियमों में संशोधन कर दिया जाये तथा माननीय अध्यक्ष को कुछ संशोधनों को रोक देने

की अधिक शक्ति दी जाये। यदि यही उनका दृष्टिकोण है, तो यह संभव है कि बहुमत दल अथवा शक्ति आरूढ़ दल अपनी बात को पूरी कर सकता है, किन्तु श्रीमान् भारतीय जनता को यह धोखा नहीं दिया जा सकेगा कि यह विधान उनके द्वारा तथा उनके हेतु बनाया गया है। हम बाह्य संसार को धोखा दे सकते हैं किन्तु निस्संदेह हम स्वयं को धाोखा नहीं दे सकते। क्योंकि बहुसंख्यक दल के पास लाठी है वे अपनी रुचि की भैंस ले सकते हैं, किन्तु भारतीय जनता का क्या हाल होगा और सच पूछिये तो बहुसंख्यक दल का भी बाद में क्या हाल होगा? जैसा कि मैं अभी कह चुका हूं, बहुत से संशोधन, जो कि बहुसंख्यक दल के सदस्यों द्वारा ही पेश होने चाहिये थे, रोक दिए गए हैं। श्रीमान्, यह तो केवल दल के मुखियाओं का आधिपत्य है। अतएव मैं कहता हूं कि, श्रीमान्, वर्तमान परिस्थितियों में यह प्रस्ताव उपयुक्त नहीं है। मुझे सभापति की प्रतिष्ठा, निष्पक्षता तथा ईमानदारी में पूर्ण निष्ठा है और मुझे पूर्ण आशा है कि सभापति परिषद् के अधिकारों की रक्षा करेंगे। किन्तु, श्रीमान्, इस प्रस्ताव के पारित करने का अर्थ यह होगा कि हमने जनतंत्र को विदा कर दिया है। जनतंत्र में यह अपेक्षित है कि यहां प्रत्येक संशोधन पर, प्रत्येक सूचित संशोधन पर, उसके सारे पहलूओं पर वाद-विवाद होना चाहिए। संशोधनों को पेश न करने के लिए दल की ओर से कोई आदेश नहीं दिया जाना चाहिये। जैसा कि मैं कह चुका हूं, श्रीमान्, हम कोई ऐसा कार्य नहीं कर रहे हैं जिसे साधारण कार्य कहा जा सके। हम स्वतंत्र, स्वाधीन भारत के विधान के मसौदे पर विचार कर रहे हैं; हम अपने भाग्य का निर्माण कर रहे हैं अत: जो भी संशोधन भेजा गया है, उसे रोका नहीं जाना चाहिए। यदि संशोधनों को इस प्रकार रोक दिया गया तो यह जनतंत्रवाद के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण होगा। अतएव, श्रीमान्, मैं बहुसंख्यक दल के सदस्यों से भी अत्यन्त विनीत भाव से अनुरोध करता हूं कि यह उनके अपने हित में है और जनता के भी हित में है कि वे प्रत्येक संशोधन के पेश होने पर बल दें तथा उसके सब पहलुओं पर वाद-विवाद करें। ऐसा करके वे अपना पवित्र कर्त्तव्य पालन करेंगे जो कि भारतीय जनता ने उन पर डाला है। किन्तु यदि वे बहुसंख्या में होने के नशे में अपने कर्त्तव्य की उपेक्षा करते हैं, तो वे इस विधान को जैसे चाहें पारित कर सकते हैं, किन्तु भारतीय जनता उस विधान को कभी नहीं अपनायेगी। जैसा कि मैं पहले भी एक अवसर पर कह चुका हूं, मैं एक बार फिर कहता हूं कि यह विधान वास्तव में भारतीय जनता द्वारा नहीं बनाया गया है और हद से

[श्री दामोदर स्वरूप सेठ]

हद ऐसा समझा जायेगा कि इसे देश की जनता के केवल पंद्रह प्रतिशत प्रतिनिधियों ने बनाया तथा पारित किया है और वे प्रतिनिधि भी अप्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा आए थे और ऐसे निर्वाचन के बारे में प्रोफेसर लास्की का मत है कि यह भ्रष्टाचार को बढ़ाता है। अतः श्रीमान्, मैं आशा करता हूं कि यह परिषद् इस प्रस्ताव पर गम्भीरता से विचार करेगी और इसे ठुकरा देगी, जिससे कि परिषद् को अब तक आये हुए सारे संशोधनों के प्रत्येक पहलू पर विचार तथा वाद-विवाद करने का अवसर प्राप्त हो सके।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, मैं आपका अत्यन्त आभारी हूं कि आपने मुझे नियमों पर इस संशोधन के विरुद्ध अपनी खेद तथा क्रोध की भावना व्यक्त करने का अवसर दिया है। इस संशोधन का अभिप्राय यह है कि हमें इस परिषद् में जो कुछ थोड़ी सी भाषण की स्वतंत्रता है उसे भी कम कर दिया जाये। श्रीमान्, हम सब शायद माननीय सदस्यों के सामने बुद्धिमत्ता की बीन बजाने के योग्य नहीं हों, किन्तु मुझे विश्वास है कि आप तथा इस विधान के बनाने वाले हम सबको ऐसी भैंसे तो नहीं समझेंगे जिनके समक्ष वे भी अपनी बीन नहीं बजा सकते।

नियमों पर इस नये संशोधन द्वारा उन संशोधनों को रोकने का प्रयत्न किया गया है जिन्हें कि केवल शाब्दिक, व्याकरण सम्बन्धी अथवा रूप सम्बन्धी समझा जाता है अथवा मान लिया जाता है। श्रीमान्, शाब्दिक संशोधन प्रायः परिषद् के अन्य सदस्यों द्वारा ही नहीं, अपितु मसौदे के रचनायकों द्वारा भी रखे गये हैं यदि यह नियम केवल उन्हीं के विरुद्ध काम आना है जिन्हें कि मसौदा-समिति के सदस्य होने का सौभाग्य नहीं मिला और उनके विरुद्ध काम नहीं आना है जो कि मसौदा बनाने के पश्चात्, प्रत्येक शब्द-समूह को ध्यान से तोलने के पश्चात्, इस विधान के विभिन्न अनुच्छेदों तथा खंडों पर ध्यानपूर्वक विचार करने के पश्चात् यह जान पाते हैं कि उन शब्दों से वह आशय व्यक्त नहीं होता जो कि वे चाहते थे और वे शब्दों को बदलने अथवा शाब्दिक संशोधन करने का प्रयत्न करते हैं, तो यह न्याय नहीं होगा; विशेषतः यदि गैर-सरकारी सदस्यों को ऐसा करने की स्वतंत्रता न दी जाये। मेरे विचार में यह इतना अन्याय तथा अपरिषदात्मक होगा कि उसका ऐसे होने के कारण मुझे विश्वास है यह परिषद् इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करेगी।

श्रीमान्, उस दिन मुझे ऐसा संशोधन पेश करने का दुर्भाग्य प्राप्त हुआ जो कि केवल शाब्दिक संशोधन दिखता था, अर्थात् 'समस्त नागरिकों' के स्थान पर—'प्रत्येक नागरिक' यह शब्द रखने थे। मुझे अतीव आश्चर्य हुआ तथा प्रसन्नता हुई कि विद्वान् डा. अम्बेडकर भी उस सुझाव की उपयुक्तता को समझ सके और उन्होंने आश्वासन दिया कि उस शाब्दिक दिखाई देने वाले परिवर्तन पर विचार करेंगे और अनुकूलता से विचार करेंगे। दूसरी ओर डा. अम्बेडकर ने स्वयं अनुच्छेद 40 पर एक संशोधन किया था जो कि शाब्दिक संशोधन दिखाई देता था, जब तक कि कोई उन युक्तियों पर विचार न करे जो कि उन्होंने कृपा करके इसके समर्थन में दी थी, तो इन दोनों के पीछे आशय तो एक ही था।

इस प्रकार के शाब्दिक परिवर्तन, चाहे उनका रूप कुछ भी हो, केवल वाद-विवाद खड़ा करने अथवा अपना नाम पत्रों में छपवाने के मनोरंजनार्थ ही नहीं रखे जाते। शाब्दिक संशोधनों में प्रायः अभिव्यंजना का अन्तर होता है, जो प्रश्न के सुलझाने की प्रणाली का अन्तर है, हो सकता है पीछे छिपे हुए आदर्श का अन्तर भी हो। और चाहे हम सब अंग्रेजी के शब्द-कोष के पंडित न हों, किन्तु तदपि शायद हम एक शब्द परिवर्तन के द्वारा दृष्टिकोण का कुछ अन्तर और दृष्टिबिंदु का कुछ अन्तर बता सकें, जिसे केवल इसीलिये ठुकरा देना अपेक्षित नहीं है कि हमारे पास कानूनी वाक्य-विन्यास का विशिष्ट चातुर्य्य, विशेष ज्ञान तथा अनुभव नहीं है।

इस दृष्टिकोण के समर्थन में मैं यह भी कहूंगा कि, श्रीमान्, इस समय जिस रूप में नियम विद्यमान है उनके अनुसार भी सभापति को परिषद् के समय को बचाने की काफी शक्ति है, यदि इस परिषद् में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा वाद-विवाद की स्वतंत्रता को कम करने के यत्नों का केवल यही कारण है। मेरा सुझाव है कि आखिर हम एक ऐसा विधान बना रहे हैं, जो हमें आशा है कि कुछ वर्ष तक रहेगा। और कुछ ऊंचे क्षेत्रों में, मैं जो यह धारणा पाता हूं कि इस विधान को दोहराने अथवा बदलने की हममें पूरी शक्ति है, इससे इस मामले पर हमारा दृष्टिकोण प्रभावित नहीं होना चाहिये। यह संभव है कि अब हम जो विधान बना रहे हैं उसे हम बहुत वर्षों तक स्थिर न रख सकें। हमारे लिये ऐसे अवसर आ सकते हैं कि हमें इसमें परिवर्तन करने पड़े—परिस्थितियां हमारी आकांक्षाओं से अधिक बलवती हों—और हम आज जिस विधान का निर्माण कर

[प्रो. के.टी. शाह]

रहे हैं, वह उतने समय तक स्थिर न रहे जितना कि हम चाहते हैं। फिर भी मेरे विचार में किसी सदस्य के मन में यह बात नहीं होगी कि हम आज जो विधान इतनी गम्भीरता से बना रहे हैं वह किसी दूरदर्शिता की कमी, वाद-विवाद के अभाव, अथवा इसके समस्त अंगों पर प्रकाश न पड़ने के कारण कल बदल जाये। अर्थात् हम उपयुक्त समय पर यह न देख सकें कि विधान के शब्दों का क्या आशय है और अकस्मात हमें पता चले कि हमने ऐसी व्यवस्था रख दी है जो हमारी इच्छानुसार नहीं है।

श्रीमान्, वकील बहुत चतुर लोग होते हैं। उन्हें अवश्य ही चतुर होना पड़ता है क्योंकि वे मुख्यतया परान्नभोगी होते हैं; वे मानवता की कलह, दुर्भाग्य तथा दु:खों के आसरे अपना जीवन व्यतीत करते हैं; और इसीलिये वे सदा ऐसा आशय ढूंढ़ने, ऐसा अर्थ निकालने और ऐसा दृष्टिकोण बनाने का मार्ग निकाल लेंगे जो कि शायद विधान के मूल लेखकों की इच्छा के अनुसार कदापि न होगी। हां, इसका तब तक निवारण नहीं हो सकता जब तक कि वकीलों के पेशे की वही स्थिति रहेगी जो कि आज है। किन्तु कम से कम इसका आरक्षण तो हो सकता है और ऐसा तब होगा जब हम उचित वाद-विवाद करेंगे और इस परिषद् के समक्ष सारे विचारों के दृष्टिकोण होंगे और सारे मतों की अभिव्यक्ति हो गई हो तो जिससे कि यह इस विषय में अंतिम निर्णय कर सकेगी और विधान के विषय में इसकी विवेक तथा औचित्य की भावना में जो चीज इसे सर्वोत्तम जंचेगी उसे यह रख सकेंगी।

श्रीमान्, मैं इस युक्ति को समझने में असमर्थ हूं कि हमें इस विधान के विषय में शीघ्रता करनी चाहिये, और ऐसा करने के लिए सदस्यों के लिए वाद-विवाद का अवसर कम कर देना चाहिए, जैसा आशय कि हम नियमों में किये जाने वाले इस संशोधन में पाते हैं। श्रीमान्, यदि आप सचमुच यह चाहते हैं कि इस पर जो समय व्यय हो रहा है वह कम किया जाये, तो मैं पूछता हूं कि हम प्रतिदिन दो बार क्यों न समवेत हो, अथवा अधिक समय क्यों न बैठें, अथवा ग्रीष्म ऋतु में क्यों न बैठें। या क्या हम इतने कोमल हैं, अथवा अपने आराम तथा मनोरंजन के इतने उपासक हैं कि हम अत्यन्त सुन्दर ऋतु में ही, अत्यंत सुखप्रद कमरे में ही तथा अत्यन्त आनन्ददायक अवस्थाओं में ही समवेत होने का विचार कर सकते हैं और अपने कर्त्तव्य की अवहेलना करते हैं केवल इसी कारण कि ग्रीष्म

ऋतु की गरमी में अथवा सामाजिक व्यस्तता के मध्य में हमें अपना कर्त्तव्य करने में असुविधा होगी।

श्रीमान्, मैं आपसे पूछता हूं कि उदाहरण के तौर पर यदि आप अपराह्न में तीन से 9 बजे तक बैठें, तो आपको इसका अच्छा प्रमाण मिल सकेगा कि कितने सदस्य अपने विचारों को व्यक्त करते हैं श्रीमान्, आपको चाहिये कि हमारी शक्ति का पूरा उपयोग करें। श्रीमान्, आप हमारे उत्साह का पूरा उपयोग करें, इस मार्ग से देश-हितार्थ कार्य करने की हमारी इच्छा का पूरा उपयोग करें; और आप देखेंगे कि केवल वही लोग उपस्थित होंगे जो कि इस कठिनाई को झेल सकते हैं। इस प्रकार कार्य रूप में समय की बचत हो जायेगी और उसकी बरबादी नहीं होगी, यह शंका भी उत्पन्न नहीं होगी कि अल्पसंख्यकों को अथवा उन लोगों को जो कि बहुसंख्यकों के कृपापात्र नहीं हैं, विधान के निर्माण-कार्य में उचित भाग नहीं मिलेगा।

श्रीमान्, मैं आपसे और सारी परिषद् से कह देता हूं कि इस विधान पर विचार करने का केवल एक ही तरीका है कि उचित समय दिया जाये और समय की बचत न की जाये। यही उचित रूपेण, संतोषजनक रूप से तथा ऐसे रूप से विचार करने का तरीका है जिससे कि भावी संतान इसके निर्माण के लिये हमारा धन्यवाद दे। यदि आप शीघ्रता करना चाहते हैं—मैं तो व्यक्तिगत रूप से कोई कारण नहीं समझता कि शीघ्रता की जाये—किन्तु यदि आप शीघ्रता करना चाहते हैं तो आपको अधिक देर तक समवेत होना चाहिये, अधिक बार समवेत होना चाहिये, उस समय भी जब कि विधान-मंडल का अधिवेशन हो रहा हो, वह सभा रात को भी हो सकती है और हमें विधान के उन भागों पर विचार करना चाहिये जिनके लिये सविस्तार ज्ञान की आवश्यकता है, जिस पर पूर्ण वाद-विवाद करने के हेतु मोटे-मोटे सिद्धांतों की तथा शब्दचातुर्य्य की इतनी आावश्यकता नहीं होती, किन्तु जिसके लिये राजस्व जैसे मामलों, न्याय प्रणाली आदि जैसे विषयों के ध्यानपूर्वक अध्ययन तथा विस्तृत ज्ञान की आवश्यकता होती है।

मैं अनेक धाराओं को गिना कर परिषद् का समय नहीं लेना चाहता। प्रत्येक धारा में शुद्ध अभिव्यंजना के लिये केवल अंग्रेजी के ज्ञान की अथवा केवल विराम

[प्रो. के.टी. शाह]

संबंधी दक्षता अथवा केवल रूप की उपयुक्तता की ही आवश्यकता नहीं है; इसके लिये इस देश के इतिहास तथा आर्थिक अवस्था के सविस्तार ज्ञान की आवश्यकता है और मैं यह कहने का साहस कर सकता हूं कि यह आवश्यकता विधान पर इस प्रकार जल्दी-जल्दी विचार करने से पूरी नहीं होगी, जिस प्रकार कि आज बहुसंख्यक चाहते हैं। मैं नहीं समझता कि ऐसा करके बहुसंख्यक देश के हितों का अनुसेवन कर रहे हैं, यदि वे भाषण की स्वतंत्रता को कम करना चाहते हैं, यदि वे ऐसे नियम बनाना अथवा नियमों का ऐसा संशोधन करना चाहते हैं जिससे कि परिषद् के सामने अपने विचार अथवा दृष्टिकोण रखने के लिये हमें अब से भी कम अवसर मिल सके। श्रीमान्, अनेक बार जब हम अकेले अपने कमरे में बैठे हुए संशोधन तैयार करते हैं, तब हमारा अकेला ही दिमाग होता है। हम जब यहां आते हैं तब हम अपने सहयोगियों के विचारों का पता लगता है। जब यहां आकर हमें दूसरी अभिव्यंजनाओं का, 'दूसरे दृष्टिकोणों का ज्ञान होता है, जो तथ्यों अथवा युक्तियों पर आधारित होते हैं, तो मैं अपनी ओर से तो सर्वथा यह कहने के लिये तैयार हूं कि मुझे अपने विचारों को बदलने तथा दूसरों के अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण विचारों को स्वीकार करने में कोई भी हिचकिचाहट, कोई भी शर्म नहीं होती। किन्तु ऐसा उस स्थिति में नहीं हो सकता जब कि दूसरों के विचार हमारे समक्ष बिना युक्तियों के रखे जायें, और उनके सम्बन्ध में तथ्यों के उदाहरण न दिये जायें। यदि आप वह रास्ता रोक देंगे जिससे कि हम अपने विचार रख सकते हैं, श्रीमान्, यदि आप वाद-विवाद के कपाट बन्द कर देंगे, यहां जो संशोधन भेजे जाते हैं, यदि आप उन पर 'बिना वाद-विवाद के' मत लेंगे, तो आप सदस्यों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अत्यन्त आधारभूत अधिकार भी छीन लेंगे। किन्तु उसका अर्थ यह होगा कि आपको क्रूर बहुमत का समर्थन प्राप्त है और देश के विवेकयुक्त बुद्धिजीवियों का समर्थन प्राप्त नहीं है।

श्रीमान्, मैं यह बात एक दूसरे दृष्टिकोण से भी रखना चाहता हूं। आपके पास बहुत विद्वान् विशेष-ज्ञान-प्राप्त मसौदा-लेखक हैं। उनसे पूछिये। पता लगाइये, मसौदा-समिति के ही अध्यक्ष से पता लगाइये कि क्या अन्य देशों ने, जिन्हें कि हमसे अधिक अनुभव के साथ विधान बनाना पड़ा था, ऐसे कार्य पर समय नहीं

लगाया है जो कि वर्तमान एवं भावी संतति वे लिये इतना महत्त्वपूर्ण है? श्रीमान्, भारत-शासन-अधिनियम को भी (ब्रिटिश) संसद में स्वीकृत होने में कई वर्ष लग गये थे, यद्यपि उस संसद को ऐसे कानून बनाने में हमसे कहीं अधिक अनुभव है। फ्रांसीसी लोगों ने स्वतंत्र होने के पश्चात् केवल विधान के निर्माण में ही दो वर्ष लगा दिये थे। अमरीकी लोगों ने, जब कि वे स्वतंत्र हुए थे और जब अमरीका में केवल 13 राज्य थे जिनकी जनसंख्या हमसे सौवां भी भाग नहीं थी, उस समय अपना विधान पारित करने में दो वर्ष लगाये थे और उसमें वे उन झगड़ों को नहीं सुलझा सके थे जो कि अन्तिम मसौदा पारित करने से पूर्व समय पर उठे और अंत में संयुक्त राज्य की स्थापना हुई, जिस नाम से कि वह देश आज कल पुकारा जाता है।

श्रीमान्, मैं आपको असंख्य उदाहरण दे सकता हूं, जहां कि समय व्यय किया गया था और ऐसा करना उचित था। देश के मूल-विधान को पारित करने से पहले उस पर गौर किया जाना चाहिये, विचार किया जाना चाहिये और प्रत्येक दृष्टिकोण से उस पर ध्यान दिया जाना चाहिये। और श्रीमान्, मैं फिर कहता हूं कि आपके इस तरह जल्दबाजी करने से यह काम उस प्रकार नहीं होगा। अतएव, यदि मुझे ऐसा प्रस्ताव करने का अधिकार हो तो मैं निस्संदेह यह सुझाव रखूंगा कि यह मामला पुनर्विचारार्थ मसौदा-समिति अथवा परिषद् की स्टीयरिंग-समिति अथवा अन्य किसी उपयुक्त समिति में भेज दिया जाये। मैं शीघ्रता से कार्य करने के विरुद्ध नहीं हूं, विधान को यथासंभव शीघ्र ही पारित करने के विरुद्ध नहीं हूं। मैं इस पर जल्दबाजी से विचार करने के विरुद्ध हूं, इस पर अंट शंट तरीके से विचार करने के विरुद्ध हूं और इसी कारण मैं आपके समक्ष यह सुझाव रखता हूं, हमें ऐसे तरीके ढूंढने चाहियें जैसे कि इस पर अधिक समय लगाया जाये, इसके लिये अधिक वक्त रखा जाये। हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि हमें प्रायः इस बात के लिये दोष दिया जाता है कि हम बिना परिश्रम किये भत्ते लेते हैं। अतएव, श्रीमान्, मेरा सुझाव है कि परिषद् के लिये यह अभीष्ट होगा यदि इस प्रकार के प्रस्ताव को आज पारित करने के स्थान पर—जिसे कि आप बहुसंख्यकों की सहायता से पारित अवश्य कर सकते हैं—आप सारे मामले पर पुनर्विचार करें तथा

[प्रो. के.टी. शाह]

इसे उचित समय में संशोधनों के साथ पेश करें। और वह भी तब करें जब आप यह देखें कि विघ्न डालने के उद्देश्य से ही बाधा उपस्थित की जाती है। उससे यथासंभव पूर्ण वाद-विवाद होना संभव होगा, उससे किसी के लिये यह सोचने का स्थान नहीं रहेगा कि उनके विचारों को उचित रूप से व्यक्त नहीं करने दिया गया था। साथ ही इससे यह भी लाभ होगा कि विधान पूर्ण, समस्त तथा शुद्ध बनेगा और उससे अधिक अच्छा बन सकेगा जो कि इन कोशिशों से बन सकता है। धन्यवाद, श्रीमान्।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रांत : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैंने श्री कामत के संशोधन संख्या 7 पर एक संशोधन की सूचना दी थी; किन्तु उसके लिए अब समय नहीं रहता है, अत: मैं केवल अपने दृष्टिकोण की व्याख्या करूंगा। मैं चाहता था कि श्री कामत के संशोधन सं. 7 के अंत में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें ''और खंड (ए) (3) हटा दिया जाये।''

मैंने अपने मित्र श्री दामोदर स्वरूप सेठ और प्रोफेसर के.टी. शाह और अन्य मित्रों की वक्तृतायें ध्यान से सुनी हैं। मेरे विचार में वे भी समान रूप से इस बात के लिए उत्सुक हैं कि यह विधान यथासंभव शीघ्रातिशीघ्र पारित हो जाये। इस समय हम जिस गति से चल रहे हैं, उससे नौ दिन में बीस अनुच्छेद पारित हुए हैं। अर्थात् दो अनुच्छेद प्रतिदिन के लगभग बैठे। विधान में 315 अनुच्छेद हैं और 8 अनुसूचियां हैं, इसलिए सामान्यत इस गति से विधान को पारित करने में लगभग 200 दिन लगेंगे। मेरे विचार में न्यूनातिन्यून भी इतना समय अपेक्षित होगा, क्योंकि हम जानते हैं कि इन नौ दिनों में कांग्रेस दल के सदस्यों ने अपने अधिकतर संशोधन पेश नहीं किए और उनकी ओर से बहुत ही कम संशोधन पेश हुए। मैं नहीं मानता कि इस समय जिस गति से कार्य हो रहा है उससे अधिक शीघ्र हो सकता है और मैं नहीं मानता कि यदि हम इस विधान के विचारार्थ कम से कम 200 दिन भी न दें, तो इसके शीघ्र पारित होने की संभावना है। इसे शीघ्र पारित करने का केवल एक ही उपाय है और वह यह है कि हम अधिक देर तक बैठा करें। यदि हम अपने बैठने का समय 3 घंटे से 5 घंटे भी कर दें तो भी बहुत दिन लगेंगे। व्यक्तिगत रूप से मेरे विचार में तो हम अब भी कोई समय व्यर्थ नहीं खो रहे हैं, क्योंकि जो समय बचता है उसे कांग्रेस दल इस बात में खर्च करता है कि कौन से संशोधन पेश करने के योग्य हैं और कौन से नहीं और इस प्रकार वास्तव में परिषद् का समय बच जाता है। मैं नहीं

समझता कि कोई और ऐसा तरीका है जिससे कि हम अधिक वेग से कार्य कर सकते हैं।

मेरी मित्र श्रीमती दुर्गाबाई ने जो प्रस्ताव रखा है उसमें यह मान लिया गया है कि इस प्रणाली द्वारा कुछ अधिक गति से प्रगति संभव है। व्यक्तिगत रूप से मेरे विचार में तो इससे प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। सर्वप्रथम तो मि. नज़ीरुद्दीन अहमद हैं जिन्होंने रूप-सम्बन्धी बहुत से प्रस्तावों की सूचना दी थी, किन्तु वे उनमें से अधिकांश को पेश नहीं कर रहे हैं। इसी प्रकार खंड (3) के दूसरे भाग को भी जिसमें कहा गया है कि सदृश आशय के अथवा मिलते-जुलते संशोधन पेश नहीं किए जायेंगे, मैं बहुत गंभीर बात समझता हूं। एक ही विषय विशेष पर अनेक संशोधन हो सकते हैं और शायद परिषद् एक संशोधन को स्वीकार करना चाहे और सभापति द्वारा चुने हुए संशोधन को स्वीकार न करना चाहे। यद्यपि यह कहा गया है कि उन संशोधनों को पेश किया हुआ समझा जायेगा, व्यक्तिगत रूप से मेरे विचार में ऐसा समझना उपयुक्त न होगा जब तक कि प्रस्तावक अपने भाषण के साथ उसे पेश ना करे। मेरे विचार में संशोधन के परिषद् में पेश हुए बिना उन्हें पेश हुआ समझ लेना लोकतंत्र के विपरीत होगा। यद्यपि इससे वास्तव में परिषद् का बहुत अधिक समय नहीं बचेगा, किन्तु अनेक सदस्यों की ओर से यह अनुचित शिकायत पैदा हो जायेगी कि इस प्रकार हम उनका मुंह बंद करने का प्रयत्न कर रहे हैं। मैं ऐसा नहीं समझता कि उनका मुंह बंद किया जायेगा, क्योंकि आप सदा उन संशोधनों को पेश करने की अनुमति दे देंगे जिनमें कि कुछ तथ्य हों। किन्तु फिर भी कांग्रेस-विरोधी यह शिकायत कर सकते हैं कि उन्हें चुप किया जा रहा है तथा उनका मुंह बंद किया जा रहा है। अतएव मैं सच्चे हृदय से मेरी मित्र श्रीमती दुर्गाबाई से सविनय कहना चाहता हूं कि इस प्रस्ताव पर पुनर्विचार करें और देखें कि क्या इस पर बल देना उपयुक्त होगा और क्या इससे वास्तविक प्रयोजन सिद्ध होगा? मेरी बहुत प्रबल भावना है कि विधान एक स्थायी चीज होती है, और इस कारण ऐसी कोई शिकायत नहीं होनी चाहिए कि हम इस पर समुचित रूप में विचार नहीं कर रहे हैं। मुझे आशा है कि इस प्रस्ताव पर पुनर्विचार किया जायेगा तथा मेरे मित्र मेरे कथन को ध्यान में रखेंगे।

***श्री बी.एन. मुनवली** (बम्बई रियासतें): उपाध्यक्ष महोदय, जहां तक कि इस प्रस्ताव का आशय है वहां तक तो मैं इससे पूर्णतया सहमत हूं, किन्तु जहां इससे

[श्री बी.एन. मुनवली]

परिषद् के विशेष सदस्यों के अधिकारों तथा विशेषाधिकारों का न्यूनन होता है वहां मुझे इसका विरोध करना होगा।

श्रीमान्, हम यहां समवेत होते रहे हैं तथा अनुच्छेदानुसार वाद-विवाद करते रहे हैं किन्तु हमारा यह वाद-विवाद व्यर्थ नहीं रहा है। केवल महत्त्वपूर्ण बातों, महत्त्वपूर्ण संशोधनों पर ही वाद-विवाद होता रहा है। कई माननीय सदस्यों ने जब यह देखा कि उनके संशोधनों में कोई तथ्य नहीं है तो उन्होंने अपने संशोधनों को वापिस ले लिया, इस प्रकार पर्याप्त बुद्धिमता का परिचय दिया। इन परिस्थितियों में, मेरे विचार में इस प्रस्ताव को पारित करके हम दूसरे विधान-मंडलों के लिए बहुत बुरा उदाहरण रख रहे हैं। अतएव मैं इस प्रस्ताव का बलपूर्वक विरोध करता हूं और परिषद् से अनुरोध करता हूं कि सार्वभौम सत्ता प्राप्त निकाय होने के कारण हम जो कुछ उदाहरण रखेंगे, और यदि यह प्रस्ताव स्वीकार कर लेंगे तो शायद अन्य विधान-मंडल उनका अवलम्बन करें। यह एक बुरा उदाहरण होगा और माननीय सदस्यों को इसका विरोध करना चाहिए।

***मौलाना हसरत मोहानी** (संयुक्तप्रांत : मुस्लिम): श्रीमान्, मुझे श्रीमती दुर्गाबाई के रखे हुए प्रस्ताव का बलपूर्वक विरोध करना है। इस प्रस्ताव में जैसी असाधारण शक्तियों का सुझाव दिया गया है, हमारे अध्यक्ष के पास भी ऐसी असाधारण शक्तियां इस समय न होने पर भी, अनुभव से हमें पता चला है, इस परिषद् की कार्यवाही को देख कर साधारण सदस्यों के मन में कुछ भ्रान्त धारणायें उत्पन्न हो गई हैं। मैं जो कुछ कह रहा हूं वह समझा दूं। मेरे पास कांग्रेस दल की ओर से लागू की गई दो प्रतोद-आज्ञाओं (whips) की प्रतिलिपियां हैं प्रतिदिन इस परिषद् की बैठकें आरम्भ होने से पहले...।

***उपाध्यक्ष:** यहां उनकी चर्चा नहीं होनी चाहिए।

***मौलाना हसरत मोहानी:** मैं यह कहना चाहता हूं कि प्रतिदिन...।

***उपाध्यक्ष:** क्या आप कृपा करके इस स्थान पर उन कांग्रेस के प्रतोदों की चर्चा बंद न करेंगे? वे प्रलेख इसलिए नहीं होते कि उनका यहां प्रयोग किया जाये।

***मौलाना हसरत मोहानी:** मैं तो यहां देखता हूं कि ऐसा दिखाई देता है कि वहां जो कुछ निर्णय होता है उस पर यहां शब्दश: आचरण किया जाता है। इससे सामान्य सदस्यों के मन में शंका उत्पन्न होती है, क्योंकि इससे सारा मामला एक-दल का कार्य बन जाता है, बल्कि मेरे विचार में एक व्यक्ति का नाटक बन जाता है। यदि ऐसा है तो, यदि हम अध्यक्ष को असाधारण शक्ति भी दे दें, तो मेरे लिए यह प्रश्न पूछना उचित होगा कि इस विधान-परिषद् के नाट्य रचने की क्या आवश्यकता है, यदि यह एक दल का ही खेल होना है, अर्थात् यह कांग्रेस दल का कार्य ही होना है, अथवा एक व्यक्ति का नाटक होना है।

श्री अलगू राय शास्त्री (संयुक्तप्रांत : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं श्रीमती दुर्गाबाई का धन्यवाद करता हूं कि उन्होंने एक ऐसा प्रस्ताव रखा है जिससे इस विधान के पास करने में कुछ समय बच सकता है। जिन मित्रों ने इसका विरोध किया है मैं उनसे सहमत नहीं हूं। यह कहना कि जल्दी में यह विधान पास किया जा रहा है, मैं समझता हूं अनुचित है। हम यह देख रहे हैं कि इस विधान-परिषद् को बने हुए काफी समय हुआ और काफी समय इस बात के लिये दिया जा चुका है कि विधान तैयार किया जा सके और एक अच्छी ड्राफ्टिंग कमेटी इस विधान के मसविदे को लिखने में लगी रही है। इसकी मूल धाराओं को हमने यहां पहले ही स्वीकार कर लिया है, इसके मौलिक आधार हम स्वीकार कर चुके हैं। अब इस प्रकार के संशोधन देना कि जिन में भाषा के सुधार और सुझाव पेश किये गए हों जिन में कहीं से 'दी' (the) निकालने के, कहीं पर 'आई' (i) को डाट करने के, कहीं 'टी' (t) को कट करने के 'कहीं ',' लगा दिया जाये, कहीं ';' लगा दिया जाये। इस प्रकार के भाषा सम्बन्धी सुधार की बातें जो इसमें रखी जाती है वह मैं समझता हूं कि आज गरीब जनता के प्रति, जिसके पैसे के ऊपर यह सारा शासन चल रहा है, अन्याय है। हमको एक-एक पाई बचाना चाहिये, एक-एक मिनट बचाना चाहिये।

अभी मैंने अपने मित्र सेठ दामोदर स्वरूप की बात सुनी। वह यहां तो कहते हैं कि इस मामले में किसी तरह की जल्दी नहीं होनी चाहिये, परन्तु बाहर मैंने अपने मित्रों को यह भी कहते सुना है कि 'विधान बनता जा रहा है, देर होती जा रही है, न मालूम कब पूरा होगा, कब नए चुनाव होंगे'। आवश्यकता इस बात की है, जनता चाहती है कि विधान को हम जल्दी-जल्दी बनायें और नए चुनाव

[श्री अलगू राय शास्त्री]

करें, बालिग मताधिकार पर, जिसमें हर वयस्क जिसकी आयु 21 वर्ष से अधिक है अपनी राय दे, और अपना मत देकर अपने सच्चे प्रतिनिधियों को यहां पर भेजे, ताकि शासन की व्यवस्था ऐसे हाथों में आ जाये जो जनता का सच्चा शासन कहा जा सके। आज यह विधान-परिषद् एक indirect चुनाव से आई हुई है। लोग तो यह भी कहते हैं, हमारे वही मित्र, जो सेठ दामोदर स्वरूप की राय के हैं, यह कहते हैं कि मौजूदा विधान-परिषद् बेकार चीज है। यह विधान-परिषद् भंग कर दी जाये और जो मसविदा यह लाई है उसे बालिग मताधिकार से चुने हुए लोगों के सम्मुख उपस्थित किया जाये। एक और सेठ जी और उनके विचार के लोग यह कहते हैं और आज इस विधान पर विचार करने के लिये अधिक से अधिक समय की मांग की जाती है। जो सुझाव, जो प्रस्ताव हमारे सामने है उसमें थोड़ी-बहुत कोई बात इधर-उधर सुधार दी जाये वह तो मैं नहीं कह सकता, लेकिन जो इसकी भावना है, इसके पीछे जो विचार हैं, मैं उनका हृदय से समर्थन करता हूं। इसमें कहा गया है, प्रेसिडेन्ट को अधिकार दिया गया है कि 'कोमा', 'सेमीकोलन' या ऐसी जो चीजें हैं, भाषा के सौष्ठव की, उसमें कोई कमी बताने के लिये कोई संशोधन आए तो वह बेकार है और उसकी आज्ञा न दी जाये, वह डाफ्रिंटग कमेटी कर सकती है। नित्य प्रति कन्सल्टेटिव कमेटी बैठती है, तरह-तरह की मशीनरी बनी हुई हैं, उनके हिसाब से भाषा का सुधार किया जाये। और मैं तो प्रारम्भ में ही कह चुका हूं कि अंग्रेजी भाषा हमारी भाषा नहीं है। हमने उस भाषा मे विधान लिखा है, उसकी ग्रामेटिकल मिस्टेक्स के विषय में हम क्या जान सकते हैं, उनके मुहावरों और व्यंग्यों को हम क्या समझ सकते हैं? इसके लिये कोई इंग्लिस्तान से आए तो उसमें जन्म भर संशोधन करता रहे। हम चाहेंगे कि यह अंग्रेजी का विधान रिपील हो जाये, हट जाये और उसकी जगह पर हमारी भाषा का विधान हो। यों वह पूरा नहीं हो रहा है। भाषा को सुधारने के लिये पं. नेहरू की चमकती भाषा का रूप और होगा, डा. अम्बेडकर की चमकती हुई भाषा का और रूप होगा, मुंशी जी की चमकती हुई भाषा का और रूप होगा। तो हम नहीं कह सकते कि कौन सी चमकती हुई भाषा है, कौन से शब्द और मुहावरे ठीक और उपयुक्त हैं, कौन से नहीं। इसमें जो भावना है वह तो आ ही जायेगी, उसमें भाषा सम्बन्धी सुधार बेकार है, उसमें हमारा समय नहीं लगना चाहिये। जो दूसरे संशोधन हैं जिन्हें कई सदस्यों ने उपस्थित किया हो

और जो प्राय: एक से संशोधन हैं, एक ही प्रयोजन और अर्थ के हैं तो उनमें से हम एक को ले सकते हैं। इस विषय में हम प्रेसिडेंट की बुद्धि पर निर्भर करें। वह कह दें कि यह व्यापक संशोधन है और इससे हमारा ड्राफ्ट improve होता है तो वह संशोधन ले लिया जाये और उस पर विचार किया जाये। विचारों को प्रकट करने के लिये पूरा अवसर होना चाहिये। लेकिन व्याख्यानों को आगे बढ़ाते रहें, लामा पूरते रहें, proceedings हम बढ़ाते रहें, दिन के आगे दिन हम बढ़ाते रहें, यह ठीक नहीं।

आप देखिये भारत की जनता हमें क्या कहती है? जरा रेल गाड़ियों के तीसरे क्लास के डिब्बे में बैठ कर चलिये। लोग कहते हैं कि पंखों के नीचे बैठे हैं अच्छी रोशनी है, मजे हैं, हमारे लिये तफरीहें हैं, विधान बन रहा है। श्री के.टी. शाह साहब ने बताया कि दो वर्ष वहां लगे, तीन वहां लगे, विधान बनाने में तो समय इसी तरह लगता ही है। यहां कितने साल आपने लगाए हैं? दो साल तो लग चुके। कैसे कहा जा रहा है कि अभी आपको पूरा समय नहीं मिला। इसलिये मैं आप से कहूंगा कि हम एक दिन में यहां पर तेरह-चौदह हजार रुपये खर्च करते हैं, कदाचित् 24 या 25 हजार प्रतिदिन। वह एक-एक दिन की कीमत है। गरीब जनता के सिर पर हम इसका बोझ नहीं डाल सकते। हमारी जनता सम्पन्न जनता नहीं है। इस गरीब जनता के बल पर हम इस प्रकार बिना वजह खर्च नहीं कर सकते। शब्द जाल पर खर्च नहीं कर सकते। एक्सपर्ट्स पर खर्च किया जाये, लोगों को अवसर दिया जाये, जिन्होंने संशोधन उपस्थित किया है वह आयें, नए-नए विचार प्रकट करें जो 'थौट प्रवोकिंग' बातें हो उनकी जानकारी इसके लिये प्रयुक्त हो। कोई Jagging order नहीं हैं। किसी का गला नहीं घोटा जा रहा है। यह कहना कि गला घोट कर लोगों को बोलने का अवसर नहीं देते हैं, एक पार्टी के स्ट्रेंथ पर सब कुछ पास किया जाता है, यह मेरे ख्याल में 'चार्ज' बेकार है। काफी सुविधा है बोलने की। अगर एक पार्टी का बहुमत हो, इस देश की जनता ने एक दल विशेष, जिसकी कुर्बानियों का एक बड़ा भारी खरीता उसके सामने है, या बहुमत ने उसे चुना है तो इसके लिये आप देश को दोष नहीं दे सकते। आज रूस में कम्युनिस्ट पार्टी का बोलबाला है, वह वहां शासन चलाती है, तो आप उसे blame नहीं कर सकते। blame तब कीजिये जब अन्याय करती हो। अगर यह पार्टी बैठती है, लोग एक राय के होते हैं और जनता की सेवा

[श्री अलगू राय शास्त्री]

करते हैं तो आप इसके लिये इन्हें दोष नहीं दे सकते। यदि आप उन्हें अपने-अपने विचार प्रकट करने देते हैं तो अच्छे विचार हमारे सामने आते हैं और हम आगे बढ़ते हैं, हमारा बिजिनेस चलता है तो मुल्क हमारा धन्यवाद करेगा। यदि हमारी पार्टी बैठकर विचार करती है, उसके स्पोक्समैन अपनी राय प्रकट कर देते हैं। और पार्टी के अन्य सदस्य नहीं बोलते तो समय बचता है। तब आपको क्यों बुरा लगता है। आपको क्यों बुरा लगता है। आपको बुरा लगे, परन्तु जनता इसे पसन्द करेगी। जो लोग delaying tactics इस्तेमाल करना चाहते हैं, जो चाहते हैं, कि 'सेमीकोलन' और 'कोमा' का परिवर्तन करने के लिये उन्हें बोलने की स्वतंत्रता हो तो यह तो amending चीज़ होती है, तब कैसे आप थोड़ी दूर भी बढ़ सकते हैं? यह तो गरीब जनता पर अन्याय होगा। हम इस बात पर चले जायें कि सदस्यों का गला न घोटिये, दफा 144 न लगाइये, यह चलने दीजिये, तो कैसे काम चलेगा? किन विचारों को आप प्रकट कर रहे हैं, कौन सी नई बात आप कहते हैं, देखना यह होगा। विचारों में नवीनता हो, कोई नया सुझाव हो, जिस से ड्राफ्ट की कमी दूर होती हो तो संशोधन कीजिये। विधान में आप improvement कीजिये, उसको प्रेसिडेंट नहीं रोक सकता।

श्रीमती दुर्गाबाई का जो प्रस्ताव है, वह यह कहता है कि अगर संशोधन एक ही किस्म के हों, संशोधन एक ही प्रकार के हों, तो उनमें जो सबसे व्यापक हो, सबसे अच्छा हो, जिसकी वजह से विधान में संशोधन होता हो, उसकी आज्ञा दी जाये। और जिन-जिन व्यक्तियों ने संशोधन दिये हैं वह कोई नई बात कहना चाहते हों, तो उन सबको बोलने का अवसर मिले। हां, किसी बात को दोहराने का समय नहीं मिलना चाहिये। Repetition is not allowed in any Parliament or Legislature anywhere कहीं भी repetition नहीं हो सकता। एक ही बात या एक ही विचार बार-बार दोहराने की आज्ञा किसी देश में किसी धारा-सभा में नहीं है। यह सिद्धांत यहां क्यों न लागू किया जाये। इसलिये मैं हृदय से श्रीमती दुर्गाबाई के प्रस्ताव का समर्थन करता हूं और जिन लोगों ने इसका विरोध किया है, मैं उनका विरोध करता हूं।

***श्री एम. अनंतशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, हमारी मित्र श्रीमती दुर्गाबाई ने जो प्रस्ताव रखा है, मैं उसका समर्थन करता हूं। मुझे भय है कि

प्रो. के.टी. शाह तथा अन्य मित्रों ने, जिन्होंने कि संशोधन पेश किये हैं तथा जो इस प्रस्ताव के विरुद्ध बोले हैं, बेकार एक आतंक सा उत्पन्न कर दिया है, यद्यपि आशंका का कुछ भी तो कारण नहीं है। मुझे भरोसा है कि वे मेरे साथ तथा प्रस्तावक के साथ इस बात में सहमत होंगे कि केवल शाब्दिक रूप-संबंधी अथवा व्याकरण-सम्बन्धी संशोधनों पर हमें अधिक समय व्यय नहीं करना चाहिये। एक ही आशय को अनन्त प्रकार से भिन्न-भिन्न रूपों तथा विभिन्न शक्लों में रखा जा सकता है। क्या हम उन सब पर समय व्यय करते रहें? हां, मैं प्रोफेसर शाह की इस बात से सहमत हूं कि हमें अपना मुंह बन्द नहीं करना चाहिये। किन्तु महत्त्वपूर्ण विषयों पर, अध्यक्ष को यह शक्ति दी जाती है कि वह ऐसे संशोधनों को चुन ले जिनमें शेष सब अन्य संशोधनों का आशय सन्निहित हो जाये; और यदि एक संशोधन में पूरा आशय न आये तो वे दो-तीन संशोधनों को चुन सकते हैं। इस विषय में हम उनकी शक्ति को किसी प्रकार सीमित नहीं कर रहे हैं। वे वाद-विवाद के प्रयोजनार्थ एक अथवा अनेक संशोधनों को चुन सकते हैं।

इसके अतिरिक्त ऐसा नहीं है कि संशोधनों को सदा के लिये रोक दिया जायेगा। नियम 38-आर के अनुसार वे मसौदा-समिति में पेश होंगे जो कि उन्हें शामिल कर देगी—जहां तक कि वे आशय के विषय में अथवा भाषा के सुधार के विषय में लाभप्रद होंगे—जब कि विधान अंतिम स्वीकृति के लिये हमारे समक्ष पेश होगा। हम जो नया नियम बना रहे हैं उससे नियम-संख्या 38-आर का गुण नष्ट नहीं हो जाता।

इसके अतिरिक्त हम जो कार्यप्रणाली रख रहे हैं वह नई नहीं है। जब आयरिश विधेयक (ब्रिटिश) संसद के समक्ष था, जो कि संसदों की माता है तथा किसी का मुंह बन्द नहीं करना चाहती, तब उन्होंने लोकसभा के लिये यह नियम बनाया था, वह स्थायी नियम-संख्या 28 है और इस समय परिषद् के समक्ष जो प्रस्ताव रखा गया है, वह संसदों की माता के स्थायी नियम-संख्या 28 से शब्दशः नकल किया हुआ है। अतएव ऐसा नहीं कहा जा सकता कि इससे वाद-विवाद में अवरोध होगा और मुझे आश्चर्य है कि हमारे मित्र इसके विषय में इतने आशंकित हो गये हैं।

और जहां तक आशयपूर्ण सुझावों का प्रश्न है, ऐसे कितने भी प्रस्ताव हमारे समक्ष रखे जा सकते हैं। अध्यक्ष उनकी अनुमति दे सकते हैं तथा शेष के सम्बन्ध में

[श्री एम. अनंतशयनम् आयंगर]

यह समझा जा सकता है कि वे पेश हो चुके हैं। ऐसा नहीं है कि वे रद्द कर दिये गये हैं। इस नियम के अधीन अध्यक्ष को यह नहीं कहा जा रहा है कि वे महत्त्वपूर्ण विषयों पर वाद-विवाद वर्जित कर दें। वास्तव में वे उनकी अनुमति देते रहे हैं। किसी अनुच्छेद-विशेष पर समस्त संशोधनों को पेश करने की अनुमति दी जाती है और उन पर तथा मुख्य अनुच्छेद पर वाद-विवाद होने दिया जाता है। इन परिस्थितियों में आशंका की क्या आवश्यकता है?

जहां तक कांग्रेस दल का सम्बन्ध है वे सारे संशोधनों पर विचार नहीं करते कि कौन से संशोधन परिषद् के समक्ष पेश होने चाहियें। किन्तु अन्य संशोधनों के विषय में हम देख चुके हैं कि कितने पेश किये जाते हैं। हम इन वाद-विवादों पर 50 दिन, अथवा दो मास, अथवा तीन मास व्यय कर सकते हैं किन्तु क्या इन संशोधनों का कोई अंत नहीं होना चाहिये? यह सत्य है कि हमें अपना मुंह बन्द नहीं करना चाहिये, किन्तु कार्य शीघ्रता से होना चाहिये। हम दो वर्ष व्यय कर चुके हैं। हां, इस परिषद् के वाद-विवादों तथा निर्णयों के लिये प्रत्येक सदस्य की सम्मति की पूर्ण आवश्यकता है। किन्तु हम सब समझते हैं कि हम में से कोई भी यहां समय बरबाद करने के लिये नहीं आया है। यह बात सब जानते हैं। किन्तु हम में से प्रत्येक को यह जानना चाहिये कि उसे कार्य की शीघ्रता के हेतु क्या करना चाहिये और साथ ही महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर वाद-विवाद की आवश्यकता को भी ध्यानान्तरित नहीं करना चाहिये। मैं अपने मित्रों से अनुरोध करूंगा कि वे इस नियम के सम्बन्ध में भयभीत न हों, इसका उद्देश्य तो केवल कार्य में शीघ्रता करना है, किन्तु इस शर्त पर कि हमारे वाद-विवाद की लाभप्रदता भी न घटे।

यह भी सुझाया गया है कि हमें प्रातः एवं सायंकाल दोनों समय समवेत होना चाहिये। यदि परिषद् राजी हो तो हम आगामी सोमवार से ही यह व्यवस्था कर सकते हैं। किन्तु इस नियम के बिना, केवल उसी से काम नहीं चलेगा। अतएव मेरा निवेदन है कि परिषद् को यह नियम बिना किसी संशोधन के उसी रूप में स्वीकार कर लेना चाहिये जिस रूप में कि श्रीमती दुर्गाबाई द्वारा यह पेश किया गया है।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैं एक बात जानना चाहता हूं। श्री आयंगर ने (ब्रिटिश) लोक सभा के जिन कार्य-प्रणाली नियमों को चर्चा की है, क्या उन

नियमों अथवा उस नियम-विशेष की प्रतिलिपि आपके पास है? अन्यथा, मैं उनसे प्रार्थना करूंगा कि वे आपको एक प्रति दें।

***उपाध्यक्षः** हां, मेरे पास है।

***मौलाना हसरत मोहानीः** श्रीमान्, मैं एक बात जानना चाहता हूं क्या मैं जान सकता हूं कि लोक सभा की कार्य-प्रणाली-सम्बन्धी जिस नियम का हवाला दिया गया है वह साधारण कार्य से सम्बन्धित है अथवा विधान-निर्माण से? मेरे विचार में जहां तक विधान-निर्माण का प्रश्न है, संसार में कहीं भी वाद-विवाद में ऐसा अवरोध उत्पन्न नहीं किया जाता।

***उपाध्यक्षः** सदस्य कुछ जानना चाहते हैं, अथवा कुछ बताना चाहते हैं?

***श्रीमती जी. दुर्गाबाईः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं नहीं समझती कि परिषद् के कुछ सदस्यों ने मेरे प्रस्ताव पर जो आरोप लगाये हैं, उनका उत्तर देने के लिये मुझे परिषद् का और समय लेना चाहिये। पहले ही, मेरे माननीय मित्र श्री आयंगर ने प्रस्ताव का विरोध करने वाले सदस्यों द्वारा उठाई गई कुछ आपत्तियों का उत्तर देने का कष्ट किया है। किन्तु मैं एक बात का उत्तर देना आवश्यक समझती हूं। मैंने कुछ सदस्यों को यह कहते सुना है कि हम यहां जो प्रणाली स्वीकार कर रहे हैं, वह सर्वथा अस्वाभाविक प्रणाली है। किन्तु मेरा निवेदन है कि इसमें कुछ भी अस्वाभाविक नहीं है और अभी-अभी एक सदस्य ने पूछा था कि यहां हम जो कार्यप्रणाली स्वीकार कर रहे हैं, वह साधारण विधेयकों के ही लिये प्रयुक्त होती है अथवा विधान-निर्माण के सम्बन्ध में भी प्रयुक्त होती है। श्री आयंगर पहले ही कह चुके हैं कि लोकसभा के स्थायी नियमों के नियम संख्या 28 के अंतर्गत यही प्रणाली आयरिश स्वशासन विधेयक को पारित करते समय काम में ली गई थी। इतना ही नहीं। भारत-शासन-अधिनियम 1935 पर विचार करने के संबंध में शीघ्रता से कार्य समाप्त करने के उद्देश्य से यही कार्यप्रणाली प्रयोग की गई थी। कार्य को शीघ्र समाप्त करने के लिये बहुत सी कार्य-प्रणालियां हैं और हमारे विचार में हमने जो यह प्रणाली सुझाई है, वह न्यूनतम भयावह है और इस परिषद् के सदस्यों को अधिकाधिक स्वीकार्य है। अतएव मैंने यह प्रस्ताव आपके समक्ष रखने का साहस किया और मुझे आशा थी कि इसे एकमत से स्वीकार कर लिया जायेगा।

[श्रीमती जी. दुर्गाबाई]

किन्तु सब प्रकार की आपत्तियां खड़ी की गई हैं और मैंने सदस्यों को यह कहते सुना है कि इस नियम से जनतंत्र के सिद्धांत की पराजय होगी तथा सदस्यों के मुंह भी बन्द हो जायेंगे। मेरा निवेदन है कि मेरे प्रस्ताव में ऐसी कोई भी बात नहीं है। मैं पहले ही समझा चुकी हूं कि इस संशोधन के पेश करने में मेरा उद्देश्य सदस्यों के विशेषाधिकारों को कम करना नहीं था, यदि वे मेरे संशोधन पर ध्यानपूर्वक विचार करेंगे, तो वे मुझे दोष नहीं देंगे; क्योंकि केवल उन्हीं संशोधनों के वाद-विवाद पर इसका प्रभाव पड़ेगा, जो कि केवल शाब्दिक अथवा व्याकरण-सम्बन्धी हैं। हमने संशोधनों की वृहद् सूचियों को देखा है यदि हमें पता लगा कि उनमें से बहुत से संशोधन केवल शाब्दिक अथवा व्याकरण सम्बन्धी हैं। केवल इन्हीं संशोधनों को रोका जायेगा। नियम 38-आर तो पहले से ही है, जिसके अनुसार मसौदा-समिति इन संशोधनों पर विचार कर सकती है और यदि अपेक्षित हो तो उन्हें शामिल कर सकती है। अतएव इस संशोधन के विरुद्ध जो कुछ वाद-विवाद हुआ है वह सब अनावश्यक है और मैं परिषद् से अनुरोध करती हूं कि मेरे इस प्रस्ताव को निस्संकोच स्वीकार कर ले। अध्यक्ष ने यह बात स्पष्ट कर दी है कि वे इस शक्ति के प्रयोग करने में अत्यन्त न्यायपूर्वक काम लेंगे और संशोधनों को चुनने में वे किसी को अप्रसन्न नहीं करेंगे तथा प्रत्येक को प्रसन्न करेंगे।

श्रीमान्, मैं परिषद् से पुनः अनुरोध करती हूं कि इस संशोधन को स्वीकार कर लिया जाये।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मेरे माननीय मित्र श्री आयंगर ने लोक-सभा के नियम 28 का उद्धारण देकर परिषद् में भ्रांति उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है। उस नियम से तो संशोधन संख्या 16 का समर्थन होता है जो कि मैंने पेश किया है।

***श्री एम. अनंतशयनम् आयंगरः** मेरे मित्र कोई और वक्तृता नहीं दे सकते। यदि वे इसे स्वीकार नहीं करते तो न करें।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैं आपकी अनुमति से वह नियम 28 पढ़ कर सुनाता हूं:

''किसी ऐसे प्रस्ताव अथवा विधेयक के सम्बन्ध में, जोकि सारी परिषद् की समिति में विचाराधीन हो अथवा पेश हो, अध्यक्ष को, अथवा समिति में 'वेज़ एण्ड मीन्स' के सभापति तथा उप-सभापति को यह अधिकार होगा कि वे प्रस्तावित होने वाले नये खण्डों अथवा संशोधनों को चुन लें और यदि वे उचित समझें तो वे किसी सदस्य से, जिसने कि संशोधन की सूचना दी हो, कह सकते हैं कि वह अपने संशोधन के विषय में ऐसी व्याख्या करे कि जिससे वे उस पर निर्णय कर सकें''

मैं भी केवल यही रखना चाहता हूं कि प्रत्येक सदस्य को, जिसने कि संशोधन की सूचना दी हो,...।

***उपाध्यक्षः** अब ऐसा नहीं किया जा सकता। किन्तु तीव्र वाद-विवाद को रोकने के उद्देश्य से, मैं अपने कर्त्तव्य-क्षेत्र से आगे निकल कर यह बताने की स्वतंत्रता लूंगा कि इस उप-नियम (3) द्वारा अध्यक्ष के लिये संशोधन भेजने वाले सदस्यों से ऐसी प्रार्थना करने का निषेध नहीं हो जाता हो, यदि आपको उस सीमा तक अध्यक्ष में श्रद्धा हो।

अब मैं संशोधनों पर मत लेना आरम्भ करूंगा।

***एक माननीय सदस्यः** क्या अध्यक्ष के पास पहले से ही ये अधिकार हैं?

***उपाध्यक्षः** यदि होते, तो इस प्रस्ताव को रखने में कोई मतलब ही नहीं होता।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि नियम 38-पी के प्रस्तावित उप-नियम (2) को निकाल दिया जायें।''

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि 'President shall (अध्यक्ष को)' इन शब्दों के आगे 'उस सदस्य की बात सुनने के बाद जिसने कि संशोधन की सूचना दी हो, यह शब्द जोड़ दिये जायें।''

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''That in the proposed sub-rule (2) of rule 38-P for the words 'shall have the power to' the word 'may' be substituted.''

(कि नियम 38-पी के प्रस्तावित उप-नियम (2) में 'अध्यक्ष को...का अधिकार होगा' इन शब्दों के स्थान पर 'अध्यक्ष...सकता है' ये शब्द रख दिये जायें।)

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''That in the proposed sub-rule (2) of rule 38-P, for the words 'amendments' the words 'such amendments' be substituted.''

(कि नियम 38-पी के प्रस्तावित उप-नियम (2) में 'संशोधन' शब्द के स्थान पर 'ऐसे संशोधन' ये शब्द रख दिये जायें।)

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''That in the proposed sub-rule (2) of rule 38-P, the comma after the word 'verbal' and the word 'grammatical' be deleted.''

(कि नियम 38-पी के प्रस्तावित उप-नियम (2) में 'शाब्दिक' के बाद का अर्ध-विराम तथा 'व्याकरण-सम्बन्धी' यह शब्द निकाल दिया जाये।)

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''That in the proposed sub-rule (2) of rule 38-P, the words 'and to remit them to the Drafting Committee' be added at the and.''

(कि नियम 38-पी के प्रस्तावित उप-नियम (2) के अन्त में यह शब्द जोड़ दिये जायें कि 'और उन्हें मसौदा-समिति को भेज देने का अधिकार होगा'।)

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि नियम 38-पी का प्रस्तावित उप-नियम (3) निकाल दिया जाये।''

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''That in the proposed sub-rule (3) of rule 38-P, for the words 'shall also have the power to' the word 'may, further' be substituted.''

(कि नियम 38-पी के प्रस्तावित उप-नियम (3) में 'अध्यक्ष को यह भी अधिकार होगा कि' इन शब्दों के स्थान पर 'अध्यक्ष ऐसा भी कर सकता है कि' ये शब्द रख दिये जायें।)

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''That in the proposed sub-rule (3) of rule 38-P, for the words 'similar' the word 'same or similar' be substituted.''

(कि नियम 38-पी के प्रस्तावित उप-नियम (3) में 'सदृश' शब्द के स्थान पर 'उसी अथवा सदृश' ये शब्द रख दिये जायें।)

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''That in the proposed sub-rule (3) of rule 38-P, for the words 'shall' wherever it occurs, the word 'may' be substituted.''

(कि नियम 38-पी के प्रस्तावित उप-नियम (3) में अंग्रेजी के 'shall' ('गा') शब्द के स्थान पर 'may' ('सकता है') शब्द रख दिया जाये।)

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

श्री विश्वनाथ दासः श्रीमान्, मैं अपना संशोधन वापिस ले लेने के लिये सविनय परिषद् की अनुमति चाहता हूं।

परिषद् की अनुमति से संशोधन लौटा दिया गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''That in the proposed sub-rule (3) of rule 38-P, after the words 'without discussion' at the and, the following provision be added :

'Provided that a member whose amendment has not been so selected for consideration shall, if he so desires, be permitted by the President to state why his amendment should be considered.'

(कि नियम 38-पी के प्रस्तावित उप-नियम (3) में अन्तिम शब्दों के पश्चात् निम्न शर्त्त जोड़ दी जाये:

''पर किसी सदस्य को, जिसका कि संशोधन इस प्रकार विचारार्थ चुना न गया हो, यदि वह सदस्य चाहे तो, अध्यक्ष उसे यह बताने की अनुमति देगा कि उसके संशोधन पर क्यों विचार किया जाना चाहिये।'')

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''That after the proposed sub-(3) of rule 38-P, the following proviso be added:

'Provided that before the President so selects any amendment, the member who has given notice of any amendment shall have the right to explain the nature and purport of his amendment.' ''

(कि नियम 38-पी के प्रस्तावित उप-नियम (3) के पश्चात् निम्न प्रावधान जोड़ दिया जाये:

''पर शर्त यह है कि इससे पूर्व कि अध्यक्ष इस प्रकार कोई संशोधन चुने, किसी सदस्य को जिसने कि संशोधन की सूचना दी हो, यह अधिकार होगा कि वह अपने संशोधन का स्वरूप तथा आशय समझा सके।'')

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''That the existing rule 38-P be renumbered as sub-rule (1) of rule 38-P, and to the said rule as so renumbered the following sub-rules be added :

(2) The President shall have the power to disallow amendments which seek to make verbal, grammatical or formal changes.

(3) The President shall also have the power to select for consideration and voting by the House the more appropriate or comprehensive amendment or amendments out of the amendments of similar import and any such amendment not so selected may, unless withdrawn, be deemed to have been moved and may be put to the vote without discussion.''

(क) कि वर्तमान नियम 38-पी की संख्या-पी नियम का उपनियम (1) कर दी जाये और उक्त उप-नियम के पश्चात् निम्नलिखित उप-नियम जोड़ दिये जायें:

(2) अध्यक्ष को (ऐसे) संशोधनों को, जिनका उद्देश्य केवल शाब्दिक, व्याकरण-सम्बन्धी अथवा रूप-सम्बन्धी परिवर्तन करना हो, पेश होने से रोक देने का अधिकार होगा।

(3) अध्यक्ष को यह भी अधिकार होगा कि वह सदृश अभिप्राय के संशोधनों में से परिषद् के विचारार्थ तथा मत लेने के लिये अधिक उचित अथवा व्यापक संशोधन अथवा संशोधनों को वह चुन ले, और ऐसे किसी संशोधन के विषय में जो इस प्रकार चुना न गया हो, यदि वह वापिस न ले लिया जाये, तो यह समझा जा सकता है कि वह पेश किया जा चुका है तथा बिना वाद-विवाद के उस पर मत लिये जा सकते हैं।

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***उपाध्यक्ष:** यदि मैं ऐसा कह सकता हूं तो सदस्यों से यह अनुरोध करूंगा कि वे अपने समय का अधिक अच्छा उपयोग करें।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करती हूं:

''That after rule 38-V, the following new rule be inserted

Defination–38-W. In the Chapter (excepting in rules 38-U and 38-V thereof), the expression 'President' includes any person for the time being presiding over the Assembly.' ''

[कि नियम 38-वी के पश्चात्, निम्नलिखित नया नियम जोड़ दिया जाये।

परिभाषा: 38-डब्ल्यू इस अध्याय में (सिवाय इसके नियमों 38-यू तथा 38-वी के) 'अध्यक्ष' शब्द में उस समय परिषद् में सभापति के पद पर आसीन व्यक्ति भी सम्मिलित समझा जायेगा।'']

इस परिषद के माननीय अध्यक्ष ने अपनी शक्तियां उपाध्यक्ष को प्रदान कर दी हैं कि अध्यक्ष की ओर से उपाध्यक्ष कार्य-प्रणाली के नियमों के अध्याय 6-ए के नियम 38-यू तथा 38-वी के अतिरिक्त सारे नियमों के अन्तर्गत सारे प्रकार्य कर सकते हैं। मुझे विश्वास है कि माननीय सदस्यों को ज्ञात होगा कि यह दो नियम विधेयकों को प्रमाणित करने के सम्बन्ध में हैं। इन दो नियमों को छोड़ कर अध्यक्ष ने अब अध्याय 6-ए के अधीन अपने सारे अधिकार माननीय उपाध्यक्ष को प्रदान कर दिये हैं जो कि आजकल परिषद् में सभापति के पद पर आसीन हैं और उपाध्यक्ष महोदय अध्यक्ष की ओर से सब प्रकार्य कर सकते हैं।

क्योंकि यह किया ही जा चुका है, अत: यह आवश्यक समझा जाता है कि यह नया नियम बना दिया जाये तथा यह बात इस परिषद् की कार्यप्रणाली के नियमों में सन्निहित कर दी जाये।

संक्षेप में मेरे प्रस्ताव का यही उद्देश्य है। मुझे आशा है कि परिषद् को इसे स्वीकार करने में कोई कठिनाई न होगी।

श्रीमान्, मैं इसे पेश करती हूं।

***उपाध्यक्ष:** अब हम 18 से 23 तक के संशोधनों पर विचार करेंगे।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि नये नियम 38-डब्ल्यू सम्बन्धी प्रस्ताव को निकाल दिया जाये।''

वैकल्पिक संशोधन के रूप में, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि नियम 38-डब्ल्यू जोड़ने के प्रस्ताव के स्थान पर निम्न प्रस्ताव रखा जाये:

(b) That after rule 14, the following new rule 1-A be inserted:

Person presiding to have powers of President in cetain cases.

''14-A. The person presiding over the Assembly under rules 13 and 14 shall have all the powers of the President under Chapter V of these rules except under rules 38-U and 38-V.''

[''(ख) कि नियम 14 के पश्चात् निम्न नवीन नियम 14-ए जोड़ दिया जाये:

सभापति को कुछ अवस्थाओं में अध्यक्ष के अधिकार होंगे

''14-ए नियम 13 तथा 14 के अधीन परिषद् में सभापति के पद पर आसीन व्यक्ति को इन नियमों के अध्याय पांच के अंतर्गत, सिवाय नियमों 38-यू तथा 38-वी के, शेष सब नियमों के अधीन अध्यक्ष के अधिकार होंगे'']

श्रीमान्, मैं यह भी प्रस्ताव करता हूं:

''कि नये नियम 14-ए के साथ निम्न व्याख्या जोड़ दी जाये:

''*Explanation.*–The rule shall have retrospective effect as if it was made on the 4th day of November 1948.' ''

(व्याख्या : इस नियम का पूर्ववर्त्ती प्रभाव होगा जैसे कि यह नियम नवम्बर 1948 की 4 तारीख को बनाया गया हो।)

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''That in the proposed rule 38-W, for the words 'any person for the time being presiding over the Assembly' the words 'the Chairman' be substituted.''

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

(कि प्रस्तावित नियम 38-डब्ल्यू में 'उस समय परिषद् में सभापति के पद पर आसीन व्यक्ति' इन शब्दों के स्थान पर 'सभापति' शब्द रख दिया जाये।)

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि प्रस्तावित नियम 38-डब्ल्यू में निम्न व्याख्या जोड़ दी जाये:

व्याख्या.— इस नियम का पूर्ववर्त्ती प्रभाव होगा जैसे कि यह नियम नवम्बर, 1948 की 4 तारीख को बनाया गया हो।''

आगे कुछ कहने से पूर्व मैं एक बात स्पष्ट कर देना चाहता हूं। मैं इस संशोधन के सिद्धान्त से पूर्णत: सहमत हूं और उस सिद्धांत का पूर्णतया समर्थन करता हूं। किन्तु मुझे खेद है कि मैं इसको वर्तमान रूप में स्वीकार नहीं कर सकता। जैसे कि मैं पहले ही संकेत कर चुका हूं यह कुकल्पित है तथा इसकी रचना त्रुटिपूर्ण है। और मैं अभी इसे सिद्ध कर दूंगा।

श्रीमान्, उपाध्यक्ष की शक्तियों का उल्लेख नियम 13 तथा 14 में किया गया है। नियम 13 में कहा गया है कि 'अध्यक्ष की अनुपस्थिति में, उपाध्यक्ष, जिसे कि अध्यक्ष मनोनीत करे, परिषद् का सभापतित्व करेंगे। अत: अध्यक्ष की अनुपस्थिति में आप विशेष मनोनीतकरण अथवा प्रार्थना पर इस परिषद् का सभापतित्व कर रहे हैं।

तत्पश्चात् नियम 14 में लिखा है:

''यदि अध्यक्ष अनुपस्थित हों तथा परिषद् में सभापतित्व करने के लिये कोई उपाध्यक्ष भी न हो, तो परिषद् सभापति के प्रकार्य करने के लिये किसी सदस्य को चुन सकती है।''

मैं देखता हूं कि यहां एक गम्भीर भूल रह गई थी, और माननीय सदस्या श्रीमती दुर्गाबाई ने इसको ढूंढ कर बहुत ठीक किया है, कि उपाध्यक्ष की शक्तियों की कहीं भी परिभाषा नहीं की गई है। यह कहीं भी नहीं कहा गया है कि उपाध्यक्ष को, सभापतित्व करने के अतिरिक्त, नियमानुसार निर्णय करने के कुछ

भी अधिकार होंगे। जैसे कि मैं पहले ही निवेदन कर चुका हूं, मुझे निवेदन करना चाहिये कि माननीय उपाध्यक्ष को सभापतित्व करने की शक्ति देने के प्रावधान में यह भी सन्निहित है कि उनमें व्यवस्था देने तथा परिषद् के निर्णयों की घोषणा करने की शक्ति होगी। रुग्णावस्था के कारण हमारे माननीय स्थायी अध्यक्ष की अनुपस्थिति में हम ऐसा करते ही रहे हैं। किन्तु, श्रीमान, यदि यह विचार किया जाये कि माननीय उपाध्यक्ष को, सिवाय सभापतित्व करने के, नियमानुसार कोई और शक्ति नहीं है, उन्हें मौन बैठना चाहिये जैसे कि वे इसके मौन दर्शक हों कि परिषद् में क्या हो रहा है और उन्हें वाद-विवाद पर नियंत्रण करने का, अथवा किसी सदस्य को चुप करने का सामर्थ्य न हो, वे परिषद् में सभापति के नाते यह काम कर सकते हैं, वह नहीं कर सकते, तो यह बाल की खाल निकालना ही होगा। किन्तु यदि यह मान लिया जायें कि ऐसा है कि आपको सभापतित्व करने के अतिरिक्त कुछ और प्रकार्य करने का अधिकार नहीं है, अर्थात् परिषद् के निर्णय घोषित करने का तथा औचित्य प्रश्नों पर व्यवस्था देने का अधिकार नहीं है। यदि यह एक भूल थी तो इसका उपचार उसी दिन से किया जाना चाहिये जब से कि आपने सभापतित्व करना आरंभ किया था और केवल आज से ही नहीं। यदि कोई भूल रह गयी है तथा इसको दूर करना है तो उस सुधार का पूर्ववर्त्ती प्रभाव होना चाहिये।

संक्षेप में मेरे संशोधन का यही आशय है। वास्तव में एक महान् सिद्धांत यह है कि मैं इसका पूर्ववर्त्ती प्रभाव रखना चाहता हूं। मेरे विचार में हम इस संशोधन के सिद्धांत को स्वीकार करना चाहते हैं, उसी समय पूर्ववर्त्ती प्रभाव आवश्यक परिणाम हो जाता है। श्रीमान्, फिर यह प्रश्न उठता है कि आप इसे कहां रखेंगे। नियम 13 तथा 14 में उपाध्यक्ष की शक्तियां उल्लिखित हैं और उनकी उपस्थिति में परिषद् द्वारा उचित-रूपेण निर्वाचित व्यक्ति को शक्तियां दी गई है। मेरे विचार में इस प्रावधान को रखने का वही उचित स्थान है। अतएव मैं सुझाव देता हूं कि प्रस्तावित नये नियम का स्थान नियम 14-ए के रूप में नियम 14 के पश्चात् है।

तत्पश्चात्, तर्क के हेतु यह मान भी लिया जाये—मुझे सर्व सम्भावित बातों का ध्यान रखना है—कि यह नियम 14 के पश्चात् न होकर ठीक उसी स्थान पर होना चाहिये जहां कि श्रीमती दुर्गाबाई इसे रखना चाहती हैं, अर्थात् 38-डब्ल्यू के

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

पास, तो भी संशोधन संख्या 23 के अनुसार यह व्याख्या रख कर कि इस नियम का प्रभाव पूर्ववर्त्ती होगा जैसे कि यह नवम्बर 1948 की 4 तारीख को बना हो, पूर्ववर्त्ती प्रभाव उत्पन्न करना चाहिये। किन्तु 4 तारीख सही नहीं है। मुझे पूर्वाशा में ही एक तारीख रखनी पड़ी है, क्योंकि हमने 4 नवम्बर को बैठना आरंभ किया था, किन्तु आपने सभापतित्व करना कुछ समय पश्चात् आरंभ किया था। किन्तु यदि यह तारीख बदल कर वह भी कर दी जाये जिस दिन से आपने सभापतित्व करना आरंभ किया था तो भी यह संशोधन मान लिया जाना चाहिये। मैंने सब आपत्तियों का निराकरण करने के लिये कुछ पहले की तारीख रख दी है। किन्तु यदि इस तारीख के आधार पर आपत्ति की जाये तो जो भी संशोधन सुझाया जाये मैं उसे मानने के लिये तैयार हूं। मैंने बिल्कुल सही तारीख नही रखी है, उसका कारण केवल मेरा अज्ञान है। मेरा निवेदन है कि पूर्ववर्त्ती प्रभाव होना अपेक्षित है। यदि इस नियम का बनाना ही अपेक्षित न हो, तब तो ठीक है ही। किन्तु यदि यह नियम स्वीकार किया जाता है तो उस आशंकित अवैधता का क्या होगा जो कि आपने, जब से आपने सभापति का आसन ग्रहण किया है, तब से अब तक की है। मेरा निवेदन है कि यह नियम नितांत अनावश्यक है अथवा विकल्प में, इसका पूर्ववर्त्ती प्रभाव बनाना चाहिये; या तो नियम 14-ए में अथवा उसी स्थान पर, जो कि श्रीमती दुर्गाबाई ने सुझाई है, मेरे संशोधन (संख्या 23) की व्याख्या रख कर ऐसा करना चाहिए। यदि परिषद श्रीमती दुर्गाबाई के संशोधन को स्वीकार करना चाहती है, तो यह व्याख्या प्रस्तावित नियम 38-डब्ल्यू के पश्चात् रखनी चाहिये। कुछ भी हो पर पूर्ववर्त्ती प्रभाव उत्पन्न करने वाली व्याख्या को कहीं न कहीं रखना अपेक्षित है।

***उपाध्यक्षः** अब प्रस्ताव तथा संशोधन पर वाद-विवाद हो सकता है।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाईः** श्रीमान्, मुझे खेद है कि मैं अपने माननीय मित्र श्री नज़ीरुद्दीन अहमद के संशोधनों को स्वीकार नहीं कर सकती, क्योंकि हमें नियमों के अंतर्गत 'अध्यक्ष' शब्द की परिभाषा रखनी है। उन्होंने तो यह कहा है कि

नियम 13 तथा 14 के पश्चात् हमें 14-ए रख देना चाहिये। यह असंगत है क्योंकि 'सभापति' शब्द की दो स्थानों पर परिभाषा इस प्रकार की गई है: ''परिषद् में सभापतित्व करने वाला सभापति होगा''। किन्तु हमारा अभिप्राय वह नहीं है। अध्याय 6-ए के अंतर्गत अध्यक्ष ने उपाध्यक्ष को शक्तियां प्रदान कर दी हैं। अतएव इस शब्द की वहां परिभाषा करना अपेक्षित है और 13-ए के पश्चात् 14-ए रखने का उनका संशोधन ठीक नहीं बैठता। अतएव मुझे खेद है कि मैं उनका संशोधन स्वीकार नहीं कर सकती।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों पर एक-एक करके मत लूंगा।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमती दुर्गाबाई ने जैसे स्थिति समझाई है, मैं उसे स्वीकार करने के लिये उद्यत हूं। किन्तु मैंने संशोधन संख्या 23 के समर्थन में जो युक्तियां दी थीं उनका कोई उत्तर नहीं दिया गया है। मान लीजिये कि हम श्रीमती दुर्गाबाई के संशोधन को स्वीकार कर लेते हैं, तो फिर यह व्याख्या उस संशोधन पर संशोधन के रूप में रखी जानी चाहिये जैसे कि मेरे संशोधन संख्या 23 में उल्लिखित है।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई:** श्रीमान्, मैं नहीं समझती कि संशोधन संख्या 23 आवश्यक है। व्याख्या नितांत अनावश्यक है, क्योंकि अध्यक्ष की शक्तियां तो पहले ही प्रदान की जा चुकी हैं।

***उपाध्यक्ष:** नये नियम 38-डब्ल्यू को निकाल देने सम्बन्धी संशोधन संख्या 18 निराकरणार्थी प्रस्ताव होने के कारण अनियमित है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं अपने संशोधन संख्या 19, 20 तथा 22 को वापिस लेने की अनुमति चाहता हूं।

(संशोधन संख्या 19, 20 तथा 22 परिषद् की अनुमति से लौटा लिये गये।)

***उपाध्यक्ष:** अब मैं संशोधन संख्या 23 पर मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

''That in the sub-rule 38-W, the following Explanation be added:

'Explanation.–This rule shall have retrospective effect as if it was made on the 4th day of November 1948.' ''

[उपाध्यक्ष]

(कि उप-नियम 38-डब्ल्यू में निम्न व्याख्या जोड़ दी जाये:

''*व्याख्या.*–इस नियम का पूर्ववर्त्ती प्रभाव होगा जैसे कि यह नियम नवम्बर 1948 की 4 तारीख को बना हो।'')

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं नये नियम 38-डब्ल्यू पर मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

''That after rule 38-V, the following new rule be inserted:

'Definition.–38-W. In this Chapter (excepting in rules 38-U and 38-V thereof), the expression. the expression 'President' includes any person for the time being presiding over the Assembly.' ''

(कि नियम 38-वी के पश्चात् निम्नलिखित नया नियम जोड़ दिया जाये।

'परिभाषा–38-डब्ल्यू. इस अध्याय में (सिवाय इसके नियमों 38-यू तथा 38-वी के) 'अध्यक्ष' शब्द में उस समय परिषद् में सभापति के पद पर आसीन व्यक्ति भी सम्मिलित समझा जायेगा।')

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

विधान का मसौदा (जारी)

अनुच्छेद 8–जारी

***उपाध्यक्ष:** अभी हमारे पास पाव घंटा बाकी है। हम विधान के मसौदे के अनुच्छेद 8 पर वाद-विवाद पुनरारम्भ कर सकते हैं।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): हम अब उठ सकते हैं।

***उपाध्यक्ष:** हमारा समय मूल्यवान् है। हमें पाव घंटा व्यर्थ नहीं खोना चाहिये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''That for clause (3) of article 8, the following be substituted:

'(3) In this article—

(a) the expression 'law' includes any ordinance, order, bye-law, rule, regulation, notification, custom, or usage having the force of law in the territory of India or any part thereof;

(b) the expression 'law in force' includes laws passed or made by a legislature or other competent authority in the territory of India before the commencement of this Constitution and not previously repealed, notwithstanding that any such law or any part thereof may not be then in operation either at all or in particular areas.' ''

(कि अनुच्छेद 8 के खंड (3) के स्थान पर निम्न खंड रख दिया जाये:

(3) इस अनुच्छेद में–

(क) 'कानून' शब्द में ऐसे सब अध्यादेश, आदेश, उप-विधि, नियम, आनियम, अधिसूचना, रूढ़ि, अथवा परिपाटी समाविष्ट होंगी जिनका भारत के राज्यक्षेत्र अथवा उसके किसी भाग में कानून के सदृश प्रभाव हो;

(ख) 'प्रवृत्त कानून' इस अभिव्यक्ति में ऐसे सब कानून समाविष्ट होंगे जो इस संविधान के आरम्भ होने से पूर्व किसी विधान-मंडल अथवा भारत के राज्यक्षेत्र में किसी अन्य क्षम प्राधिकारी द्वारा पारित अथवा निर्मित किये गये हों तथा पहले कभी उनका विखंडन नहीं हुआ हो, चाहे ऐसा कोई कानून अथवा उसका कोई अंश उस समय सर्वथा अथवा किसी क्षेत्र विशेष में प्रवृत्त न हो।')

श्रीमान्, इस संशोधन को लाने का कारण यह है: ध्यान देने से पता चलेगा कि अनुच्छेद 8 में दो अभिव्यक्तियां हैं। अनुच्छेद 8 के उप-खंड (1) में 'प्रवृत्त कानून' ये शब्द प्रयुक्त हुए हैं, उधर उप-खंड (2) में 'कोई कानून' ये शब्द हैं। इस परिषद् में जो मूल मसौदा पेश हुआ था, उसके उप-खंड (3) में केवल 'कानून' शब्द की परिभाषा की गई थी। 'प्रवृत्त कानून' की परिभाषा नहीं की गई थी। इस संशोधन द्वारा उस भूल को सुधारने का प्रयत्न किया गया है। हमने उप-खंड (3) के दो भाग कर दिये हैं–(क) और (ख)। (क) में कानून शब्द की वही

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

परिभाषा रखी गई है जो मूल उप-खंड (3) में थी, और (ख) में 'प्रवृत्त कानून' इस अभिव्यक्ति की परिभाषा दी गई है, जो अनुच्छेद 8 के उपखंड (1) में है। मेरे विचार में और अधिक व्याख्या की आवश्यकता नहीं है।

***श्री मोहम्मद ताहिर** (बिहार : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

''That in clause (3) of article 8, for the words 'custom or usage' the words 'custom, usage or anything' be substituted.''

(कि अनुच्छेद 8 के खंड (3) में 'रूढ़ि अथवा परिपाटी' इन शब्दों के स्थान पर 'रूढ़ि, परिपाटी अथवा कोई वस्तु' यह शब्द रख दिये जायें।)

मैं कोई लम्बी वक्तृता देना नहीं चाहता। मैं केवल यही कहना चाहता हूं कि यदि 'परिपाटी' शब्द के पश्चात् 'कोई वस्तु' ये शब्द जोड़ दिये जायें तो वे अधिक अर्थसूचक होंगे। कानूनी शब्दावली यही है कि 'रूढ़ि, परिपाटी अथवा अन्य वस्तु जिसका कानून सदृश प्रभाव हो।' डा. अम्बेडकर ने एक अन्य संशोधन रखा है। यदि वह संशोधन स्वीकृत होता है तो परिषद् को यह संशोधन भी स्वीकार कर लेना चाहिये। इन शब्दों के साथ मैं इसे पेश करता हूं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, अपना संशोधन पेश करने से पहले मैं सविनय यह बताना चाहता हूं कि माननीय डा. अम्बेडकर ने एक व्यापक संशोधन पेश किया है, अतएव मेरे विचार में वर्तमान संशोधन में समुचित परिवर्तन कर देना चाहिये जिससे कि यह उस संशोधन पर चस्पा हो सके। मैं इसके दूसरे भाग को ही पेश करना चाहता हूं।

***उपाध्यक्ष:** सर्वप्रथम यह पता कर लीजिये कि वे इसे स्वीकार करते हैं अथवा नहीं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** जब तक मैं इस विषय में युक्तियां उपस्थित नहीं करूंगा, तब तक वे इसे स्वीकार नहीं करेंगे। श्रीमान्, मेरे विचार में इस संशोधन को तो स्वीकार करना ही होगा।

मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

''That in amendment No. 260 which has been moved by Dr. Ambedkar, the words 'custom or usage having the force of law in the territory of India or any part thereof' be deleted.''

(कि डा. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये संशोधन संख्या 260 में 'रूढ़ि अथवा परिपाटी...जिनका भारत के राज्यक्षेत्र अथवा उसके किसी भाग में कानून के सदृश प्रभाव हो' ये शब्द निकाल दिये जायें।)

***उपाध्यक्ष:** आप सूचना दिये बिना उस संशोधन को बढ़ा कैसे सकते हैं? यह अनियमित है। आप केवल सुझाव दे सकते हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैंने मूल अनुच्छेद पर एक संशोधन की सूचना पहले दी थी। डा. अम्बेडकर के संशोधन को देखते हुए आवश्यक परिवर्तन होने चाहियें।

***उपाध्यक्ष:** अच्छा।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मुझे परिषद् का समय बरबाद करने से घृणा है। किन्तु मैं परिषद् से कहना चाहता हूं कि जरा वह यह सोचे कि मैं जिन शब्दों को निकाल देना चाहता हूं उनके कारण कितनी बेहूदगी उत्पन्न हो जायेगी। बेहूदगी यह है कि खंड (3) के प्रथम भाग में हम कहते हैं कि 'कानून' में ऐसी रूढ़ि अथवा परिपाटी भी समाविष्ट होगी जिनका भारत के राज्यक्षेत्र अथवा उसके किसी भाग में कानून के सदृश प्रभाव हो।' प्रसंग से पृथक् विचार करने पर तो यह सर्वथा अनापतिजनक है। कानून में 'ऐसी रूढ़ि अथवा परिपाटी को, जिसका कानून सदृश प्रभाव हो' शामिल ही मानना चाहिये, किन्तु हमें इस परिभाषा को प्रसंगानुसार जांचना चाहिये। इसे अनुच्छेद 8 के खंड (2) के साथ पढ़ना चाहिये। खंड (2) में उल्लिखित है कि ''राज्य ऐसा कोई कानून नहीं बनायेगा, जिससे इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों का अपहरण अथवा न्यूनन होता हो और इस खंड के प्रतिकूल बना, प्रत्येक कानून प्रतिकूलता की मात्रा तक शून्य होगा।'' मैं सादर इस परिषद् का ध्यान उप-खंड (2) की प्रथम पंक्ति में 'make' (बनायेगा) तथा तीसरी पंक्ति में 'made' (बना) इन शब्दों की ओर आकृष्ट करता हूं। श्रीमान्, आप कहते हैं कि 'राज्य कोई ऐसा कानून नहीं बनायेगा' और यह भी कहते हैं

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

कि 'कानून में ऐसी रूढ़ि अथवा परिपाटी भी समाविष्ट होंगी जिनका कानून सदृश प्रभाव हो।' अतएव खंड [3 (क)] की इस व्याख्या को खंड (2) में बैठाने से यह अर्थ निकलता है कि ''राज्य कोई ऐसा कानून नहीं बनायेगा'' अर्थात् कोई ऐसी रूढ़ि अथवा परिपाटी नहीं 'बनायेगा' जिसका कानून के सदृश प्रभाव हो।'' तात्पर्य यह है कि ''कानून के सदृश प्रभाव वाली रूढ़ि अथवा परिपाटी' को कोई 'बना' नहीं सकता। वे तो स्वयं बनती हैं। 'आक्सफोर्ड' के शब्द कोष में रूढ़ि की यह परिभाषा है:

> ''कानून में रूढ़ि का अर्थ है ऐसी परिपाटी जिसमें चिरस्थायी होने के कारण अधिकार अथवा कानून का बल सन्निहित हो गया हो, विशेषत: किसी स्थान, व्यापार, समाज आदि की कोई विशेष परिपाटी।''

अतएव राज्य किसी भी अर्थ में कोई रूढ़ि नहीं बनाता है। रूढ़ि प्राय: किसी स्थान, परिवार, वर्ग आदि के लोगों द्वारा स्थापित की जाती है। रूढ़ि एक मार्ग पर निरंतर चलने से बनती है। यहां आपने ये शब्द प्रयोग किये हैं कि ''राज्य कोई कानून नहीं बनायेगा, अर्थात्, कानून सदृश प्रभाव वाली कोई रूढ़ि अथवा परिपाटी नहीं बनायेगा।'' स्वतंत्र भारत में भी राज्य का कानून के सदृश प्रभाव वाली रूढ़ियों अथवा परिपाटियों के बनाने में कोई हाथ नहीं हो सकता। मेरे विचार में इन शब्दों को निकाल देना चाहिये। यही कठिनाइयां प्रत्येक पग पर मेरे सामने आती है। श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि ये शब्द इस प्रसंग में उपयुक्त नहीं है तथा निकाल दिये जाने चाहियें।

***माननीय श्री बी.जी. खेर** (बंबई : जनरल): श्रीमान्, वहां 'includes' (समाविष्ट) शब्द है, 'means' (इसका यह अर्थ है) यह शब्द नहीं है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** इनके कृपापूर्ण हस्तक्षेप पर मुझे बहुत प्रसन्नता है। इससे मेरी कठिनाई जरा भी दूर नहीं होती। क्या इसका यह अर्थ है कि राज्य कोई 'रूढ़ि अथवा परिपाटी' बनाता है? फिर भी आपके समक्ष यह कठिनाई है कि राज्य को ऐसा कानून बनाना पड़ता है जिसमें कि रूढ़ि अथवा परिपाटी समाविष्ट है।

***माननीय श्री बी.जी. खेर:** हां, इसका अर्थ है, 'जहां भी अपेक्षित हो।' कानून में सदा ऐसा समझ लिया जाता है। मुझे खेद है कि हस्तक्षेप करना पड़ा है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** कदाचित् उन्हें अपनी वक्तृता को जारी रखने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, यदि मैं उन्हें यह बात बता दूं कि (3) (क) में 'कानून' शब्द 8(1) के कानून शब्द के प्रसंग से है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** डा. अम्बेडकर के कृपापूर्ण हस्तक्षेप के लिये भी मैं आभारी हूं कि रूढ़ि तथा परिपाटी का कानून सदृश प्रभाव होता है आदि। यह व्याख्या खंड (2) पर भी लागू होती है, जिसमें लिखा है कि राज्य कोई कानून नहीं बनायेगा। मेरा अभिप्राय खंड 8(1) से नहीं है वरन् 8(2) से है। कठिनाई जैसी पहले थी वैसे ही है। इस कृपापूर्ण हस्तक्षेप के लिये मुझे हर्ष है किन्तु मुझे इससे कुछ प्रकाश नहीं मिला है।

(संशोधन संख्या 263 और 264 पेश नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्ष:** अनुच्छेद 8 पर अब सामान्य वाद-विवाद हो सकता है।

***माननीय सदस्यगण:** हमें अब उठ जाना चाहिये।

***उपाध्यक्ष:** क्योंकि इस विषय पर मतभेद दिखाई देता है, अत: परिषद् कल प्रात: के 10 बजे तक के लिये स्थगित होती है।

***श्री सत्यनारायण सिन्हा** (बिहार : जनरल): हम सोमवार को समवेत होंगे।

***उपाध्यक्ष:** मैं सोचता हूं कि हम देश का धन बचाने के लिये अतीव उत्सुक हैं, अत: हम शनिवार को भी समवेत होंगे। परिषद् सोमवार के प्रात: दस बजे तक स्थगित होती है।

तत्पश्चात् परिषद् सोमवार तारीख 29 नवम्बर, 1948 को
प्रात: दस बजे तक के लिये स्थगित हुई।